Chapter-5

अध्याय : 5

मनोवैज्ञानिक समस्याओं का निरूपण

पूर्ववर्ती विवेचन में स्पष्ट किया जा चुका है कि मानव-जीवन से सम्बन्धित समस्याएँ परस्पर संलग्रित होती हैं और उन्हें एक दूसरे से अलगाना कठिन होता है। अजय और शकुन (आपका बण्टी) की समस्या जहाँ एक ओर पारिवारिक है, वहाँ मनोवैज्ञानिक भी है। कई बार सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याएँ, जो किन्हीं आर्थिक कारणों से उद्भूत हुई हैं, आगे चलकर मनोवैज्ञानिक समस्या का रूप धारण कर लेती हैं। कृष्णा सोबती के उपन्यास "सूरज मुखी अँधेरे के" में रत्ति का या रत्ती पर शैशवकाल में किये गए अवांछित और अबोध बलात्कार के मनोवैज्ञानिक परिणामों को विश्लेषित किया गया है। यहाँ केन्द्र में रत्ती है। बलात्कार करनेवाले व्यक्ति की सामाजिक एवं मानसिक स्थिति पाठक को ज्ञात नहीं है। उसकी उस मानसिकता में सामाजिक, पारिवारिक या आर्थिक परिणाम कारणभूत हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि मानव-जीवन की यह सभी समस्याएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई होती हैं।

सामाजिक एवं पारिवारिक तथा आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण हम पूर्ववर्ती अध्यायों में कर चुके हैं। प्रस्तुत अध्याय में नगरीय परिवेश के उपन्यासों के सन्दर्भ में मानव-जीवन से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक समस्याओं का आकलन किया जा रहा है। वैसे तो सभी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक समस्याओं का विश्लेषण न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। किन्तु मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का तो मुख्य प्रतिपाद्य ही मनोवैज्ञानिक समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत करना है।

मनोविज्ञान मन का विज्ञान है। उसका अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द "साय को लोजी"

यूनानी भाषा के "सायके"(Psyche) और "लोगसे (Logos) के याग से बना है। "सायक" का अर्थ है आत्मा अथवा मन और "लोगस" का अर्थ है "विचार-विमर्श"।1 अतः "सायकोलोजी" वह विज्ञान है जिसमें मनुष्यकी आत्मा अथवा मन पर विचार किया गया है। मनोविज्ञान के सिध्दान्तों पर आधारित उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहलाते हैं।

हिन्दी उपन्यासों का विकास-क्रम घटना से चरित्र, चरित्र से व्यक्ति और व्यक्ति से मन की तरफ होता गया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मन की अछूती अनचीन्ही गहराइयों और जटिलताओं की परतों को उधेड़ने का एक कलात्मक उपक्रम रहता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं होता कि उपन्यास के अन्य प्रकारों में पात्रों का मनोवैज्ञानि चित्रण नहीं होता। यहाँ डॉ. रामदरश मिश्र का यह मत ध्यातव्य होगा-" मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहने का तात्पर्य उन उपन्यासों है जो मूलतः मनोविश्लेषण पर आधारित है। मनोविज्ञान साहित्य के लिए नयी वस्तु नहीं है, वह आदि कवि वालमीकि से लेकर आज तक के सभी कवियों और साहित्यकारों की कृतियों में लक्षित होता है, किन्तु मनोविश्लेषण वाद अपने सीमित अर्थ में आधुनिक चीज है। मनोविश्लेषण वाद मस्तिष्क के चेतन, उपचेतन और अचेतन तीन विभाग कर अचेतन को विशेष महत्त्व प्रदान करता है। यही अचेतन हमारे व्यक्तित्व, हमारे सारे कार्य-व्यापारों, हमारे सारे नैतिक आचारों का निर्माता और नियंता है। चेतन तो हमारे मस्तिष्क का बहुत छोटा भाग है, उसके द्वारा हम सामाजिक सम्बन्धों को प्राप्त करते हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व बदले हुए हिम-शैल की तरह है, जिसका छोटा-सा

अंश चेतना की सतह पर लक्षित होता है और शेष नीचे छिपा रहता है । यह शेष भाग अचेतन है और यह केवल विस्तृत ही नहीं, शक्तिशाली भी है । चेतना में जो अंश प्रकट होता है वह अचेतन से ही होकर आता है, जहाँ वह जन्म लेता है । अवचेतन को चेतन के विषय का निर्धारक कहा जा सकता है । कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य मूलत: वह नहीं है जो ऊपर सतह पर दिखता है, बल्कि वह है जो अपने भीतर अनभिव्यक्त रूप से छिपा हुआ है । और उसका जितना अंश बाहर दिखता है वह भी चेतन की उपज नहीं है, उस पर भी अनजाने ही परोक्ष रूप से अचेतन का नियंत्रण और प्रभाव है ।[2]

"एक टूटा हुआ आदमी" का नायक जब गाँव जाता है, तब स्टेशन से गाँवका अंतर अपेक्षाकृत कम होते हुए भी, और सामान में कोइ खास वजनी वस्तु न होते हुए भी, ताँगा करता है । ताँगा लेने का यह कार्य उसका चेतन मन करता है, किन्तु वस्तुत: उसके मूल में अचेतन में पडी हुई उसकी दमित वासनाएँ हैं । शैशवकाल में विपन्नता और अपने घरकी सामाजिक स्थिति के कारण उसे अनेक वर्जनाओं और घृणित अपमानों से गुजरना पडा था । अंत: यह ताँगा करने के पीछे उसका सिसकता हुआ शैशव ही कारणभूत है । डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यास "टोपी शुक्ला" के डॉ. वाहिद अंजुम "डॉक्टर" को खुद अपने नाम का एक हिस्सा समझा करते थे । "डोक्टर" के बिना उन्हें अपना नाम अपूर्ण लगता था । इस ग्रंथि के मूल में भी अचेतन मनकी दमित वासना ही कार्य करती होगी । इन पंक्तियों का लेखक एक ऐसे सज्जन को जानता है, जो अपने नाम के आगे "डॉ." लगाना कभी नहीं चूकते ।

एक बार यूनिवर्सिटी से कोई पत्र आया जिस पर "डॉ." नहीं लिखा हुआ था। दूसरी बार जब वे आफिस गये, सभी सम्बन्धित विभागों को सूचित कर आये कि वे अब पी.एच.डी. हो गए हैं और वे लोग उनके आगे "डॉ." लिखा करें। उन्हें अपने "श्रीत्व" से घृणा हो चली थी। इस के मूलमें यह बात थी कि पी.एच.डी. न होने के कारण उन्हें प्रमोशन से वंचित किया गया था और फलतः उन्हे आर्थिक एवं एकेडेमिक दृष्टि से काफी हानि उठानी पडी थी। हानि की यह ठेस ही उन्हें जब-तब खटकती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे सारे कार्य-व्यापारों व व्यवहारों के मूलमें अचेतन में पडी हुई दमित वासनाएँ होती हैं, जिनका विश्लेषण मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में भली भाँति मिलता है।

<u>नगरीय परिवेश में मनोवैज्ञानिक गुत्थियों का आधिक्य :</u>

गाँवों की तुलनामें शहरों में उन्मुक्त कुदरती वातावरण की कमी रहती है। शिक्षा का प्रचार-प्रसार भी जितना नगरों में उपलब्ध होता है, उतना गाँवों में नहीं। अतः यहाँ "मेन इन एक्शन" की अपेक्षा "मेन इन कनटेम्पलेशन" का वातावरण अधिक है। फलतः मनोवैज्ञानिक ग्रंथियाँ या गुत्थियों का आधिक्य शहरों में ही पाया जाता है। शहरों में भी श्रमजीवी वर्ग के लोगों में मनोवैज्ञानिक ग्रंथियाँ बहुलता से नहीं मिलती। यह सोचने की बीमारी बुध्दिजीवी कि या परोपजीवी लोगों में ही बहुतायत से मिलती है। परिणामतः मानसिक संत्रास, पीडा एवं घुटन के वे शिकार होते हैं।

गाँवों में यदि कोई बाल-बच्चेवाला व्यक्ति बडी उम्रमें विवाह करता है तो उसकी बेटी भी उस प्रसंग में शामिल होती है, या अधिक से अधिक री-धो के चुप हो

जाती है, जब कि "एकोगी नहीं-----राधिका " की राधिका के पिता जब विद्या नामक एक अध्यापिका से विवाह करते हैं, तो राधिका का जीवन इस प्रसंग से धुरीहीन होकर गडबडा जाता है और विदेशी पत्रकार के साथ वह अमरीका भाग जाती है । अमरीकी पत्रकार डेनियल पिटरसन के साथ राधिका का भाग जाना, वस्तुतः उसकी इलेक्ट्राकाम्पलेक्स (Electra Complex) का परिणाम है । इस कार्य के द्वारा वह अपने पिता को मानसिक त्रास देना चाहती है । डैन के शब्दों में -"तुमने कभी, एक क्षण के लिए भी, प्यार नहीं किया । राधिका, तुम मुझमें अपना पिता ढूँढ रही थी, वही पिता जिसे त्रास देने के लिए तुम मेरे साथ चली आयी थी ।"3

अमरिका से लौटे बाद राधिका शायद भारत में ही स्थिर होती, पर विद्या की मृत्यु के पश्चात् उसके पिता फिर अकेले हो जाते हैं । और वे राधिका को अपने साथ रहने के लिए कहते हैं, तब वह अपने पिता को दूसरा आघात देने के लिए मनीश के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है । राधिका मनीश के व्यक्तित्व से संपूर्ण तया प्रभावित होने पर भी उस पर विश्वास नहीं करती, क्योंकि किसी एक के साथ बँधकर रहना उसकी प्रकृति में नहीं है । विजया, नयनतारा, कारिन जैसी कई लडकियाँ उसके जीवन में आयीं और चली गयीं । राधिका ऐसे यायावरी "प्लेबाय" टाईप के व्यक्तियों से घबडाती है, प्रन्तु यहाँ पिता के प्रस्ताव को प्रति क्रिया यित करते हुए वह मनीश के साथ जाने का सोचती है ।

शिक्षित स्त्री-पुरुषों में " अहं" का प्राधान्य अधिक मिलता है । परस्परके "अहं " की टकराहट से कई बार उनका दाम्पत्य जीवन खंडित हो जाता है । "आपका बण्टी" के अजय और शकुन, "अँधेरे बन्द कमरे" के हरबंस और नीलिमा,

"वे दिन" के रायना और जाक, "कड़ियाँ" के महेन्द्र और प्रमिला आदि इस के उदाहरण हैं । शिक्षित लोग बुध्दिवादी आत्म केन्द्रित और स्वार्थी होते हैं । "महानगर की मीता" में मीता का विवाह भी उसके नायक की उन्नति के शिखर की एक सीडी बनकर रह जाता है । परन्तु डॉक्टर होते ही उसे सीडी की आवश्यकता नहीं रहती । गाँवों में लोग भाग्यवादी अधिक होते हैं, अतः दूसरे की उन्नति से उनमें हीनता-ग्रंथि का विकास बहुत कम हो पाता है । गाँवों में प्रायः लड़कियों की शादी सत्रह-अठारह वर्ष में हो जाती है । उन्हें अधिक पढ़ाया भी नहीं जाता । अतः अविवाहित शिक्षित महिलाओं की कुण्ठाएँ भी वहाँ नहीं मिलती । "टेराकोटा" की मिति तथा "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा की मानसिक घुटन व संत्रास नगरीय परिवेश का परिणाम है । निष्कर्षतः : कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ व समस्याएँ नगरीय परिवेश के शिक्षित व उच्च समाजमें अधिकांशतः परिलक्षित की जा सकती हैं ।

<u>खंडित दाम्पत्य-जीवन की समस्या</u>: यह समस्या सामाजिक एवं पारिवारिक भी है, परन्तु इसके मूलमें कई बार मनोवैज्ञानिक बातें रहती हैं । "आपका बण्टी" के अजय और शकुन का दाम्पत्य-जीवन परस्पर के "अहं" की टकराहट के कारण खंडित होता है । आज की प्रमुख समस्या है व्यक्ति के "अहं" का विस्तार । व्यक्तिवादी भौतिकवादी चिन्तन ने स्त्री-पुरुष दोनों के अहं को इतना उग्र और प्रखर बना दिया है कि उसकी चपेटमें व्यक्ति शनैःशनैः अमानवीय होता जा रहा है । एक स्थान पर वकील चाचा शकुन से कहते हैं : "जब एक बार धुरी लड़खडा जाती है तो फिर जिन्दगी लड़खडा ही जाती है"।4 और प्रस्तुत उपन्यास अजय और शकुन की इस लड़खड़ाहट को मर्म स्पर्शिता के साथ उकेरता है ।

"आपका बण्टी" के सम्बन्धमें डॉ. महीपसिंह ने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया था कि जो शकुन पहले किसीका हस्तक्षेप सहन नहीं करती, बादमें डॉ.जोशी के हस्तक्षेप को कैसे बरदास्त कर लेती है?[5] शकुन का चरित्र ही उसका उत्तर है । उसके सारे कार्य-कलाप सहज रूप से सम्पादित न होकर अजय की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही होते हैं । अजय बण्टी को अपने पास रखना चाहता था, अतः वह उसे अपने पास रखने पर जोर देती है । डॉ. जोशी के साथ दूसरा विवाह वह कोई प्रेम या जातीय आकर्षण के कारण नहीं करती, वह भी अजय के कार्य की प्रतिक्रिया है । अजय ने दूसरी शादी कर ली, तो वह भी उसे दिखाने के लिए दूसरी शादी कर लेती है । कहने का तात्पर्य यह कि अजय को "कुछ कर दिखाने के" लिए वह कुछ भी बरदाश्त कर सकती है । शकुन के मनकी कसक ही यही है : "सच पूछा जाए तो अजय के साथ न रह पाने का दंश नहीं है यह, जो उसे उठते-बैठते सालती रहती है ।[6] यदि वह डॉ. जोशी के साथ "एडजस्ट" नहीं हो सकती, तो उसे अजय तथा समाज सभी का सुनना पड सकता है कि "वह, है ही ऐसी," "वह कहीं नहीं टिक सकती", "उसका कहीं गुजारा नहीं हो सकता" आदि आदि । अतः जहाँ अजय के साथ वह बात-बात पर लडती-झगडती थी, वहाँ डॉ. जोशी के साथ वह बात-बात पर समझौता करेगी और भीतर ही भीतर कुंठित होती जाएगी ।

उषा प्रियंवदा के उपन्यास "रूकोगी नहीं------राधिका") की राधिका डैन पिटरसन के साथ विवाह करके अमरिका भाग जाती है । पिटरसन के साथ भी वह अधिक समय नहीं रहती क्योंकि दोनों के विवाहकी कोई स्थायी व ठोस भूमिका नहीं थी । यह शादी भी एक प्रतिक्रिया और राधिका के "अहं का परिणाम थी । राधिका के पिता अंत राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान प्रोफेसर थे । उसकी माँ का

स्वर्गवास हो चुका था । भाई अपने व्यवसाय, श्वसुर-गृह से प्राप्त वैभव तथा पत्नी में मग्न या । ऐसी स्थिति में अपने विद्वान पिता के प्रति राधिका के मनमें "बध्यत्व-ग्रंथि"(Father Fixation) का निर्माण होता है । वह पिता के अध्ययन-अनुशीलन में सहायिका बनकर अपने "अहं" को पोषित करती है । तभी एक घटना उसे स्तम्भित कर जाती हैं । उसके पिता विद्या नामक एक सुशिक्षित प्रौढ अध्यापिका से दूसरा विवाह कर लेते हैं । राधिका के मन में स्थापित आदर्श पिता की इमेज खण्डित होती है, अतः वह अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति डेनियल पिटरसन के साथ विदेश भाग जाने के व्यवहार द्वारा करती है । राधिका के मनका विश्लेषण करते हुए डैन एक स्थान पर बिलकुल सही कहता है: "माँ के मरने के बाद तुम्हारा पिता के प्रति लगाव कुछ एब्नोर्मल हो गया । यदि भारतीय परिवेश में तुम्हें प्रारम्भ से ही युवा मित्र बनाने की सुविधा होती तो ऐसा नहीं होता । तब तुम्हें प्रसन्नता होती कि तुम्हारे पिताने जीवन में फिर सुख पाया ।"7

अपने पिताको मानसिक आघात देने के लिए राधिका डैन के साथ विदेश तो चली जाती है, पर उनका दाम्पत्य-जीवन सुखी, स्थिर वह सफल नहीं हो पाया, क्योंकि राधिका का डैन के प्रति आकर्षण स्वाभाविक न होकर एब्नोर्मल था । वह एक प्रतिक्रिया थी । बादमें राधिका अचानक मनीश के साथ जाना चाहती हैं, उसमें भी वही प्रतिक्रिया का भाव है । राधिका के जीवन की त्रास दी ही यही है कि माँ की मृत्यु के उपरान्त वह अपने पिता को इतना चाहने लगती है कि उसमें किसीका तिल-मात्र हस्तक्षेप भी वह बरदाश्त नहीं कर सकती, और उसके पिता जब दूसरा विवाह कर लेते हैं, तब उसकी उस अवधारणा को भारी चोट पहुँचती हैं । उसके बादके

राधिका के सारे कार्य-कलाप सोच-समझ के कारण नहीं प्रतिक्रिया के परिणाम-स्वरूप होते हैं । प्रतिक्रिया-स्वरूप होनेवाले कार्य सहज नहीं हो सकते ।

यहाँ किसी को यह प्रश्न हो सकता है कि शकुन का डॉ. जोशी के साथ का विवाह भी प्रतिक्रिया-स्वरूप हुआ है, फिर वह डॉ. जोशी के साथ समझौता कर लेगी यह कैसे कहा जा सकता है? वस्तुतः शकुन डॉ. जोशी के साथ भी प्रसन्न तो नहीं रह सकती । उसका "इड"(ID)8 उसमें कुछ प्रश्न पैदा कर सकता है, परन्तु उसका "सुपर इगो"(Super Ego)9 जो सभ्यता एवं सामाजिक मान्यताओं द्वारा अनुशासित रहता है, उसे वैसा नहीं करने देगा ।

"अन्धेरे बन्द कमरे" में उपन्यास के अन्त में हरबंस और नीलिमा की स्थिति "आपका बण्टी" के प्रारंभ की स्थिति के समान है । अन्तर इतना ही है कि "आपका बण्टी" में अजय और शकुन तलाक ले लेते हैं, जब कि यहाँ किसी प्रकार समझौता करने की वृत्ति है । कामू के अनुसार हमलोग सह अस्तित्व के लिए अभिशप्त हैं । "आंतरिक भाषा और सूत्र के अभाव में सचमुच ही सह-अस्तित्व-जिसे भ्रमवश हम प्रेम कहते हैं-एक अभिशाप है ।"10

हरबंस और नीलिमा के सामने भी कोई आर्थिक समस्या नहीं है । उनकी समस्या भी वही "अहं" की समस्या है । आधुनिक शिक्षा, पश्चिमी सभ्यता तथा स्त्री-स्वतंत्रता के ख़यालों में व्यक्ति आधुनिक कहलाने के लोभ में पहले स्त्री को बढ़ावा देता है, परन्तु बादमें उसके शताब्दियों से संचित संस्कार जगते हैं, फलतः दोनों में टकराहट की स्थिति का निर्माण होता है । हरबंस नीलिमा जैसी आधुनिका के स्वतंत्र व्यक्तित्व से आकर्षित होकर प्रेम-विवाह करता है । प्रारंभ में

"अलट्रा मोडर्ननैस" के चक्कर में हरबंस नीलिमा को "पार्टियों" और "काफी हाउसों" की बहसों के लिए अधिकाधिक प्रोत्साहित करता है, परन्तु यह सब वह अपने 'अहं' को पोषित करने के लिए ही करता है। जहाँ उसे नीलिमा के द्वारा अपने "अहं" को चोट पहुँचने का खतरा महसूस होने लगता है, वहाँ वह कतराकर भाग खड़ा हो जाता है। हरबंस का विदेश भाग जाना, बाद में नीलिमा को बुलाना उमादत्त के नृत्य-द्वीप में पहले नीलिमा को भेजकर बादमें उससे असहयोग कर लेना, तथा स्वदेश लौट आने पर नीलिमा के नृत्य-प्रदर्शन में भी उसका खिंचा-खिंचा- सा रहना उसके यही "अहं" की कशमकश है। एक स्थान पर नीलिमा हरबंस से कहती है - "तुम सिर्फ इस हीन-भावना के शिकार हो कि लोग मुझे तुम से ज्यादा जानते हैं और उनमें जो बात होती है वह तुम्हारे विषय में न होकर मेरे विषय में होती है। तुम्हें यह बात खाए जाती है कि लोग तुम्हारी चर्चा नीलिमा के पतिके रूप में करते हैं। तुम्हें डर लगता है कि अगर मेरा प्रदर्शन सफल हुआ तो लोग मुझे और ज्यादा जानने लगेंगे और तुम अपने को और छोटा महसूस करोगे"। ।।

नीलिमा की बहन शुक्ला नीलिमा से दूसरे छोर पर है। जहाँ नीलिमा की बौध्दिक-जागरूकता पुरुष के अनुशासन को नकारती है, वहाँ शुक्ला की स्त्री-सहज कोमलता उस अनुशासन को नकारती है। अतः हरबंस का अवचेतन शुक्ला को चाहने लगता है। जन्म-दिन के अवसर पर शुभ कामनाओं को प्रेषित करनेवाला पत्र शुक्ला को मिल जाता है, जब कि नीलिमा को नहीं मिलता, इस पर हरबंस के अवचेतन मनको कदाचित् प्रसन्नता ही होती है। शुक्ला को चाहने के कारण ही शुक्ला के तरफ बढनेवाले जीवन भार्गव, विश्वमोहन, सुरजीत तथा मधुसूदन आदि से वह ईर्ष्या करने

लगता है । मॉडर्ननैसे के चक्कर में हरबंस ही शुक्लासे अपने मित्रों को मिलवाता है, उनकी प्रशंसा करता है, परन्तु ज्यों ही कोई शुक्ला के प्रति आकृष्ट होने लगता है, त्यों ही वह हरबंस के लिए तिरस्करणीय हो जाता है ।

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के उपन्यास "मन वृन्दावन" में एक शयौरी आती है--" इस दुनिया में सब कहीं-न-कहीं इसी तरह प्रेम करते हैं । एक दूसरे को दूसरा तीसरे को, और तीसरा चौथे को । यही करुणा है, जो प्राप्त है उसे कोई प्यार नहीं करता ।" ।2

हरबंस की स्थिति भी यही है । पहले वह नीलिमा को चाहता है क्योंकि वह प्राप्य नहीं थी । जब उसकी प्राप्ति सुलभ हो जाती है, तब वह शुक्ला को चाहने लगता है । यदि पहले वह शुक्ला को चाहता, तो कदाचित् बादमें नीलिमा की आधुनिकता उसे आकृष्ट करती ।

निर्मल वर्माने वे दिन में एक स्थान पर लिखा है--" जिन लोगों के सामने दूसरा रास्ता खुला रहता है, वे शायद ज्यादा सुखी नहीं हो पाते ।"।3 आधुनिक सभ्यता के उच्चवर्गीय लोगों की यही त्रासदी है कि उनके सामने सदैव दूसरा रास्ता खुला रहता है । जहाँ कोई एक बात हो, वहाँ व्यक्ति संतोष कर लेता है, परन्तु आधुनिक सभ्यता का एक लक्षण है-द्वन्द्व। ये द्वन्द्व उसे कभी चैन नहीं लेने देता ।

उपन्यास में हरबंस का व्यक्तित्व जितना कुंठित बताया गया है, नीलिमा का व्यक्तित्व उतना ही उन्मुक्त । ऊभानु या जीवन भार्गव के साथ के अपने आकर्षण को नीलिमा छिपाती नहीं है । उसकी अनुपस्थिति में शुक्ला द्वारा की गई हरबंस की

सेवा को भी वह अन्यथा नहीं लेती । उमादत्त के द्री पर्म शामिल होने के पश्चात् हाॅटल के एक ही कमरे में अब्बान् के साथ ठहरने के उपरांत भी वह मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं करती । वह महत्त्वाकांक्षी, आत्मनिर्भर, तथा स्वाभिमानी है । उसके अनुसार पति-प त्नी में केवल शारीरिक सम्बन्ध ही सब कुछ नहीं होते, इसके अतिरिक्त भी कुछ होता है, जिसके अभाव में स्त्रीका केवल पुरुष की वासना पूर्ति का साधन-मात्र रह जाना उसके स्वाभिमान के विरुध्द है । उसका सह कथन उसके इसी स्वाभिमान का परिचायक ह : " हम लोगों में एक दूसरे के प्रति जो उत्साह होना चाहिए, वह उत्साह धीरे-धीरे समाप्त हो गया है । हम लोग पति-पत्नी है, परन्तु पति-पत्नी में जो चीज होती है, जा चाज होनी चाहिये वह हममें कबकी समाप्त ह ो चुकी है । और अगर मैं ठीक कहूँ,तो वह चीज कभी थी ही नहीं ।"[14]

इसी उपन्यास में एक स्थान पर कहा गया है: "प्रेम में स्थिरता और दीर्घता लाने के लिए व्यकित के पास विशाल हदय ही नहीं विशाल मस्तिष्क भी होना चाहिये ।"[15] हरबंस में इसी विशाल मस्तिष्क की कमी है । उ सका मस्तिष्क कुंठित है । उसके व्यकितत्त्व में कई अन्तर्विरोध है । व्यकित आधुनिक और आर्थोडोक्स एक साथ नहीं हो सकता । परंतु हरबंस है, और यह हरबंस ही नहीं हम सब आधुनिक कहे जानेवाले लोगों की ट्रेजेडी है कि हम न पुराने मूल्यों को छोड सकते हैं , न न ये मूल्यों को अपना सकते हैं ।

"रेखा" में खंडित दाम्पत्य की समस्या एक दूसरे ढंग से आती है । भावुकता एवं श्रध्दातिरेक में "रेखा भारद्वाज". "रेखा शंकर" तो हो जा ती है, परन्तु दोनों

की वय में एक बहुत बडा फासला है । फलतः रेखाकी युवकोचित वासना की प्यास प्रोफेसर से नहीं बुझ पाती । वह रात-रात भर तडपती रहती है । उसके जीवन का मोड़ तब आता है, जब युवा राकशंकर प्रोफेसर प्रभाशंकर की एक समय की रखैल देवकी का पुत्र, जो दिखने में बिलकुल प्रभाशंकर जैसा था, जर्मनी जाने से पहले अपनी माँ देवकी के साथ रेखा के यहाँ आता हैं । रेखा उसका शॉपिंग कराने जाती हैं । गाडी में उसके निकट बैठते समय वह एक अज्ञात आकर्षण का अनुभव करती है और अनायास उसका हाथ उसके कन्धे पर चला जाता हैं । यौवन की मादक सुगन्ध का अनुभव उसे पहली बार हुआ । उसकी चेतना व विवेक (Ego) ने उस दिन उसकी रक्षा कर ली, किन्तु उसकी मानसिक नैतिकता एवं पवित्रता में एक छेद उस दिन अवश्य हो गया । यह छेद शनै-शनैः बढता गया ।

उसके भाई अरुण के मित्र सोमेश्वर दयालने जब उसे अपने बाहुपाशमें लिया, तब वह ऊपर-ऊपर से मना करती रही. पर भीतर से वह उस पागल प्रवाह में बरबस बह रही थी । सोमेश्वर से पहली बार शारीरिक सम्बन्ध होने पर रेखा के मानस में चलने वाले "इड"(ID)और "इगो"(Ego)के द्वन्द्व को लेखकने कलात्मक ढंगसे प्रस्तुत किया हैं ।

ऐसा होने पर रेखा में पहला भाव आत्मग्लानिका होता है, जिसके वशीभूत होकर वह प्रोफेसर से सब कुछ कह देना चाहती हैं, परंतु उसके अचेतन में पडी हुई वासनाएँ उसे वैसा नहीं करने देती । इसके लिए वह कारण अपनी बुध्दि से ढूँढ निकालती है : "कितना संतोष था, कितनी शांति थी उनके मुख पर । और एकाएक किसीने उसके अन्दर से कहा, "इस सुख और शांति पर आघात पहुँचाना क्या तुम्हारे

लिए उचित होगा? इस समय इन्हें सुख से आराम करने दो, कितने थके हुए हैं ये। इस समय नहीं, किसी हालत में नहीं।"[16]

मनोविज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली में इसे विस्थापन कार्य-पद्धति (Displacement) कहते हैं। अचेतन की दबी-दबायी कुंठित इच्छाओं को प्रकट करने का यह एक मनोवैज्ञानिक तरीका है। इसमें आवश्यक विचार अनावश्यक और अनावश्यक विचार आवश्यक लगने लगते हैं।

दूसरे दिन प्रोफेसर को यह बात न कहने के लिए उसका अचेतन जिस मार्ग को अन्वेषित करता है उसे मनोविज्ञान में युक्त्याभास (Rationalisation - Justification) कहते हैं। वह सोचती है"और अपने पति से अपने विश्वास घात की बात कहकर उसे बहुत सम्भव है कि शांति मिल भी जाए, लेकिन क्या वह अपने देवता में एक भयानक अशांति न उत्पन्न कर देगी? क्या अपने पाप की ज्वाला में अकेले उसका जलना काफी नहीं है? प्रभाशंकर को भी अपने पाप न होगा?"[17] अतः वह प्रोफेसर को यह बात नहीं बताती, अपने नहीं, प्रोफेसर के हित में।

रात में वह निश्चय करती है कि अब वह सोमेश्वर से न मिलेगी, परंतु अचेतन में पडी हुई वासनाएँ उसे बरबस वहाँ खीच जाती हैं, उसमें भी वही युक्त्याभास (Rationalisation) की प्रक्रिया द्रष्टिमान होती है-" नहीं, सोमेश्वर से साफ-साफ कह देना चाहती हूँ कि वह मुझसे फिर कभी न मिले। हमारे सुखमय पारिवारिक जीवन में व्याघात बनकर आनेका उसे कोई अधिकार नहीं। आज मैं अंतिमबार सोमेश्वर से मिलकर यह सब कह देना चाहती हूँ।"[18] यहाँ उसका "इड"(Id) सोमेश्वर से मिलना चाहता है, परंतु उसका "इगो"(Ego) उसमें व्याघात पहुँचाता है, अतः

पुकत्याभास द्वारा वह अपने "इगो"(Ego) को संतुष्ट करती है ।

"प्रक्षेपण" (Projection) भी अचेतन मन की एक आत्मरक्षात्मक क्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने अपराध भाव को किसी बाहय विषय पर आरोपित करके स्वयं उसके दायित्व से मुक्त हो जाता है । यहाँ रेखा भी कहती है : "चुप रहो, भूख-भूख है, वह दबाने के लिए नहीं होती, वह शांत करने के लिए होती है । भूख प्रकृति है, उसे दबाना प्रकृति के साथ अन्याय करना है ।"[5]

हम जिसे पाप समझते हैं, एक बार कर लेने के पश्चात् उसका भय कम हो जाता है और धीरे-धीरे हम उसके आदी हो जा ते हैं । इस प्रथम "पाप" के बाद रेखा खुलकर खेलने लगती है और उसके जीवन में एक के बाद एक पाँच पुरुष आते हैं- शशिकान्त, निरंजनकपूर, शिवेन्द्रधीर, मेजर यशवन्तसिंह और डॉ. योगेन्द्र मिश्र । पर निरंजन का सिगरेट केस डॉ. प्रभा शंकर के तकिये के नीचे रह जाने से रेखा और निरंजन पकड़े जाते हैं । डॉ. प्रभा शंकर पहले तो रेखा को मारने और घरसे निकाल देने को उद्यत होते हैं, परंतु रेखा के अनुनय विनय पर पिघल जाते हैं । उस दिन से संदेहकी काली छाया सदैव उनके पास मँडराती रहती है और उनका अमन-चैन खत्म हो जाता है । उनके दाम्पत्य-जीवन में एक बहुत बडी दरार उस दिन से पड़ जाती है ।

मृदुला गर्ग के उपन्यास "चित्त कोबरा" की समस्या "अन्धेरे बन्द कमरे" के विलोम पर है । इसमें उपन्यास की नायिका मनु महेश से विवाह करते हुए रिचर्ड के प्रति आकृष्ट होती है । एक स्थान पर सोचती है कि यदि उसका विवाह रिचर्ड से हुआ होता तो शायद वह महेश से प्रेम करती । वस्तुतः मृदुला जी "दोनों ओर प्रेम पलता है की थियरी को नकारती है । उनकी धारणा है:" कोई भी इन्सान एक ही

समय में एक-दूसरे को प्यार नहीं करते-----जब एक करता है तो दूसरा नहीं और जब दूसरा करता है------"।[20] महेन्द्र भल्ला के उपन्यास "एक पति के नोट्स" में निरर्थकता, व्यर्थता बोध और विरसता से ऊबा हुआ नायक बाहरी भटकन में उसे मिटाना चाहता है। "चित्त कोबरा" में नायिका की भटकन है, "एक पति के नोट्स" में नायक की।

सैक्स-जनित कुण्ठाएँ एवं विकृतियाँ : जो सैक्स जनित कुण्ठाएँ एवं विकृतियाँ मानव-जीवन को बुरी तरह से प्रभावित करती हैं उनमें निम्नांकित मुख्य हैं :-

।1। जातीय-ठण्डापन (Frigidity) : स्त्री में जातीय इच्छाओं के प्रति अभाव की स्थिति को जातीय ठण्डापन कहते हैं। ऐसी स्त्री को जातीय उत्तेजना का अनुभव नहीं होता, फलतः जातीय-संतुष्टि असंभव हो जाती है। पुरुषों में जिसे नपुंसकता (Impotence) कहते हैं, वही स्त्रियों में (Frigidity) है।[21]

यह जातीय-ठण्डापन भी दो प्रकार का होता है। ।1। कुदरती और ।2। मानसिक। कुदरती या शारीरिक ठण्डापन बहुत कम ।लाखों में कोई एक। देखने में आता है। जहाँ स्त्री में जनन-अवयव अविकसित या अर्ध-विकसित होते हैं, और जहाँ उसमें स्त्राव-ग्रंथियाँ नहीं होतीं वहाँ कुदरती या शारीरिक जातीय-ठण्डापन माना जायेगा। ऐसी स्त्री-लड़की ऋतु स्त्राव में भी नहीं बैठती। नगरीय परिवेश के आलोच्य-काल के चयनीकृत उपन्यासों में इसका कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं होता, परन्तु दूसरे प्रकार की (Frigidity) के कई उदाहरण मिलते हैं।

कृष्णा सोबती कृत उपन्यास "सूरजमुखी अँधेरे के" इस विषय पर आधृत उपन्यास है। इसमें नायिका रत्तिका या रत्ती पर शैशवकाल में एक विकृत-मानस पुरुष द्वारा अमानुषी बलात्कार होता है, जिसके फलस्वरूप उसका समूचा जीवन "एक फटी जिन्दगी" बनकर रह जाता है। इस अवांछित बलात्कार के कारण रत्ती का जीवन एक मरुभूमि-सा हो जाता है। उसके अचेतन में पडी हुई ग्रंथिके कारण वह ऐसे मौके पर जातीय-इच्छासे किनारा कर लेती है। असाधारण सुन्दरता एवं उसकी स्मार्टनैस के मोहपाश में फँसकर पुरुष उसकी ओर खींचते हैं और जब वे एकांत-क्षणों में उसके बिलकुल पास आने के लिए छटपटाते हैं, तभी वह उन्हें छोडकर बुरी तरह से तड़पाती है। इस अमानवीय क्रीडा में उसे आत्मिक आनंद आता हो, ऐसा नहीं। कथ्य की दृष्टिसे ठीक इसी बिन्दु पर यह उपन्यास उग्रजी के उपन्यास "बुधुआ की बेटी" [1928] से अलग पडता है, जहाँ प्रस्तुत उपन्यास की नायिका अपने इस फटे बचपन के कारण अभिशप्त हो इस विभीषिका में जलती है, वहाँ [बुधुआ की बेटी" रधिया को पुरुषों को ललचाकर तड़पता छोड देने में एक अमानुषी आनंद की प्राप्ति होती है।

रत्तिका के जीवन में सोलह पुरुष आते हैं, पर वे सभी उसके "जालिम ठण्डेपन" के शिकार होकर तड़पते रह जाते हैं। अन्तत: उसकी यह ग्रंथि दिवाकर नामक एक विवाहित पुरुष द्वारा टूटती है और वह उसे समर्पित हो जाती है। परन्तु वहाँ उसके स्त्री-सहज संस्कार आडे आते हैं। अन्तमें वह दिवाकर से कहती है--"मैं जुड़े हुए को नहीं तोडूँगी। विभाजन नहीं करूँगी। मेरी येह अब तुम्हारी प्रार्थना है दिवाकर।"[22]

[2] स्त्री-समलैंगिकता (Lesbianalism): जब कोई स्त्री सम-लैंगिक यौनाचार में लिप्त रहती है, तब उसे (Lesbian) [लेस्बियन] कहा जाता है।[23]

"मछली मरी हुई" (राजकमल चौधरी) की शिरीं मेहता प्रसूति-काल में माँ की मृत्यु से आहत होकर पुरुष-समागम को भय की दृष्टि से देखने लगती है। ऐसी स्त्रियाँ अपनी संतुष्टि के लिये दूसरी स्त्रियों को भी इसमें फँसाती हैं। "मछली मरी हुई" की शिरीं मेहता प्रिया को और "सफेद मेमने" में बन्नों का मामी बन्नों को समलैंगिकता के लिए प्रेरित करती है। समलैंगिक स्त्रियों को सजातीय समागम में ही अधिक आनन्द आता है, फलतः पुरुष-समागम से वे दूर भागती हैं और धीरे-धीरे एक प्रकार का ठण्डापन उनमें आता जाता है। ऐसी स्त्रियाँ पुरुष-समागम में जल्दी संतुष्ट नहीं होतीं। उनका यह ठण्डापन तभी टूटता है जब किसी पुरुष से उनका सफल समागम संपन्न होता है। "सफेद मेमने" की बन्नों और "मछली मरी हुई" की प्रिया का यह ठण्डापन सन्दों और निर्मल पद्मावत के सफल-संभोग के कारण दूर होता है।

(3) नपुंसकता (Impotence): स्त्री में जो दोष (Frigidity) को लेकर है, पुरुषों में वह नपुंसकता (Impotence) कहलाती है। यह नपुंसकता भी दो प्रकारकी होती है। जहाँ पुरुष जननेन्द्रिय का समुचित विकास नहीं होता, वहाँ कुदरती नपुंसकता मानी जाती है। ऐसे लोग बाहयतः कई बार पुरुष से लगते हैं, परंतु उनमें पुंसत्व होता नहीं है। "रेखा" का शिवेन्द्र धीर सुदर्शन व्यक्तित्व का धनी है। उस में गज़ब की आकर्षण-शक्ति है। स्त्रियाँ बरबस उसके प्रति आकर्षित होती हैं, परन्तु जैसे ही थोडी प्रगाढता बढती है, उन्हें पता चल जाता है कि उसमें पुरुषत्व की कमी है। एक स्थान पर डॉ. योगेन्द्र उसके बारे में बताते हैं--- "प्रेम प्राप्त करने के मामले में शिवेन्द्र हमेशा से बड़ा भाग्यशाली रहा है। ---- मैं इतना जानता हूँ कि युवतियाँ इस आदमी के इर्द-गिर्द मँडराया करती हैं, और यह उन युवतियों से जो चाहे करा

सकता है ।---- हाँ वह बादमें इससे घृणा अवश्य करने लगी है ।"[24] डा. मिश्र के उक्त कथनों से शिवेन्द्र की नपुंसकता का कुछ संकेत मिलता है । रेखा के आगे वह स्वीकार करता है कि वह शादी करने के काबिल नहीं है । रेखा द्वारा तिरस्कृत किए जाने पर वह कहता है----"मैं ने अपने शरीरको नहीं बनाया है, मेरी सारी कमियाँ, मेरी सारी असमर्थताएँ-----इन सबका जिम्मेदार मैं नहीं हूँ । मैं अपनी कमियों को ढँकने का जो प्रयत्न करता हूँ वह इसलिए कि मैं जीवित रहना चाहता हूँ । कायम रहने की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है, यह तो आप मानियेगा ही । मुझे इसका बड़ा दु:ख है और मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ । मैं आपसे कहता हूँ कि मैं बड़ा अभागा हूँ ।"[25]

परंतु दूसरे प्रकारकी नपुंसकता मानसिक या मनोवैज्ञानिक होती है । कई बार ऐसा भी देखा गया है कि एक ही पुरुष एक स्त्री के सम्मुख पुरुषत्व संपन्न पाया जाता है और वही पुरुष दूसरी स्त्री के लिए नपुंसक सिद्ध होता है । "रेखा" के प्रोफेसर प्रभाशंकर इसके उदाहरण हैं । रेखा और प्रभाशंकर में वय की दृष्टि से बड़ा फासला है । रेखाने भावुकता एवं श्रद्धातिरेक में शादी की थी, किन्तु प्रोफेसर का विवेक तो कहीं चूक नहीं गया था । फलत: एक अपराध-बोध (Guilt) उनके अचेतन में दबा रहता है । दूसरे रेखा के सामने बूढ़े होने का भाव उनमें हीनता-बोध भी संक्रमित करता है । फलत: रेखा के साथ वे सफल-समागम नहीं कर सकते । उसे पूर्णतया संतुष्ट नहीं कर सकते । परंतु यही प्रोफेसर मिसेज रत्ना चावला जैसी प्रौढाको भलीभाति संतुष्ट करने में सफल होते हैं, जब कि प्रौढाको जातीय-संतुष्टि देना अपेक्षाकृत कठिन होता है । विदेशों में तो कुछ स्त्रियों का व्यवसाय ही मनोवैज्ञानिक दृष्टया नपुंसक पुरुषों की इस ग्रंथि को दूर कर उन्हें जातीय-स्वस्थता प्रदान करने का होता है ।

"मछली मरी हुई" के निर्मल पदमावत का देहसौष्ठव काफी आकर्षक है । कोई सोच भी नहीं सकता कि ऐसा पहाड सा आदमी नपुंसक हो सकता है । किन्तु उसकी यह नपुंसकता शारीरिक नहीं मानसिक होती है । उसकी इस नपुंसकता के लिए कलयाणी जिम्मेदार है । कल्याणी से उस की मुलाकात अमरीका में हुई थी । निर्मल ने कल्याणी की आर्थिक सहायता की थी । कृतज्ञतावश वह उसे अपना शरीर देना चाहती है----"निर्मल तुम मेरे अपने देश के आदमी हो । अपनी ज़बान में बोलोगे यहाँ मेरा अमरिकनों से नहीं, चाइनीज़ और अफ्रिकनों से भी वास्ता पडता है । सभी मुझे "वहाइट इंडियन लेडी" कहते हैं और मेरा उजलापन चूस डालना चाहते हैं । तुम मेरे अपने देश के हो, चूसोगे नहीं, कोमल हाथों से मेरे ज़ख्म सहलाओगे, मेरे दर्दों पर मरहम लगाओगे "[26]

निर्मल पहले तो हिचकता है, पर बादमें वासना के प्रवाहमें बहने लगता है । पर तभी वह काले पत्थरों के पहाड़-सा आदमी बरफ-सा ठण्डा पड़ जाता है । लेखक ने इसका बड़ा सांकेतिक वर्णन किया है--" दो-तीन मिनिट बाद कल्याणी ने पट्टियाँ छोड़ दी और अचानक उसकी निगाहें घुटनों के बल उठते हुए निर्मल की ओर गईं । निर्मल बर्फ के टुकड़े की तरह ठण्डा हो चुका था । मर चुका था । आँखों के अंगारे बुझ चुके थे ---- तुम यह आदमी हो ?----- इतने से आदमी हो ? बस----- इसी के लिए------इतने ही के लिए मेरे पास आये थे ?------ - छिः छिः कल्याणी चीखने लगी------ फिर कभी इधर नहीं आना निर्मल । तुम आदमी नहीं हो, नरक के कीड़े हो-------मत आना कभी ।"[27]

वस्तुत: यहाँ यौन-मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रथम संभोग में पुरुष का अधिक उत्तेजित होकर शीघ्र स्खलित होना कोई दोष या नपुंसकत्व नहीं हैं । दूसरे निर्मल की इस स्थिति के लिए अचानक "स्केलेटन" को देखने से उत्पन्न उसका मन:स्थिति भी हैं । अत: कल्याणी ने यदि सहानुभूति से काम लिया होता तो निर्मल फिर से तैयार हो सकता था, परन्तु कल्याणी की अपमानजनक भर्त्सना के कारण वह कुण्ठाओं का शिकार होकर नपुंसक हो गया । इस कुण्ठासे मुक्ति कल्याणी ही दिला सकती थी, किन्तु वह दुबारा उसके पास जाने का साहस नहीं कर सका और जब साहस करने की स्थिति में पहुँचा तब तक कल्याणी डॉ. रघुवंश से विवाह कर छ: सात साल की छोटी लड़की प्रियाको छोड़कर दिवंगत हो चुकी थी । डॉ. रघुवंश को निर्मल का वृतान्त मालूम था, अत: उन्हें विश्वास हैं कि प्रिया बडी होकर निर्मल को उस कुण्ठासे मुकित दिलाकर पुन: मर्द बनाएगी ।

मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि असाधारण पुरुष(abnormal man) कुण्ठाओं के वशीभूत होकर नपुंसक हो जाता है । वास्तव में वह नपुंसक होता नहीं । किसी परिस्थिति विशेष में पडकर उसका पौरुष कूट पडता हैं । निर्मल पद्मावत ऐसा ही पुरुष है । प्रिया जब उसके नपुंसकत्वकी ओर इशारा करती है, तब वह बौखला पड़ता हैं । उसे लगता है मानो कल्याणी ही उसे आह्वान दे रही है और वह पागल होकर पशुकी तरह टूट पड़ता हैं । एक बार नहीं, अनेक बार वह प्रिया पर सफल बलात्कार करता है । उसका पुंसत्व लौट आता है और वह साधारण हो जाता है । प्रियाभी पुरुष के सम्भोग का आनन्द प्राप्त कर साधारण हो जाती है और वह नीली मछली शारीं पद्मावत को पाकर फिर से जी उठती हैं ।

14। सम्लैंगिकता (Homosexuality): इंगे और स्टेन हेगलर महोदय ने सम्लैंगिकता के सम्बन्धमें लिखा है: जिन लोगों की जातीय-वृति अपनी ही जाति ।लिंग। के व्यक्तियों के प्रति केन्द्रित होती हैं उन्हें सम्लैंगिक तथा उनकी इस जातीय-वृत्ति को सम्लैंगिकता कहा जाता है । दोनों शब्दों की मूल व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द (homo) और (Sex) से है जिनका अर्थ क्रमशः "समान" और "जाति" होता है ।[28]

विश्व के बहुत के नामांकित व्यक्ति इस विकृति से पीडित मिलते हैं । यहां डॉ. धनराज मानधाने का यह मत ध्यातव्य होगा---" बहुत सी असभ्य एवं बर्बर जातियों में सम्लैंगिक व्यभियार श्रध्दा की दृष्टि से देखा गया है । मिस्रवासी अपने पूज्य देवताओं "होरस" और "सेत" को सम्लैंगिक मैथुनकारी बताते हैं । यूनानी लोगों ने तो सैनिक गुणों के लिये इसे आदर्श माना था । "क्लीओपेट्रा में" सिजर को युवावस्था में अपने नेता के साथ सम्लैंगिक सम्बन्ध को स्थापित करते हुए बतलाया है । दान्ते का गुरु लातिनी, सुप्रसिध्द मानवतावादी म्यूरे, मूर्तिकार माइकेल एंजलो, कवि मार्लो तथा बेकन जैसे महान व्यक्ति भी यौन-विपरीतता के शिकार थे । यौन-विपरीतता साहित्यिक, अभिनेता, संगीतज्ञ, बाल संवारनेवाले, होटल के बैरे तथा चर्च के फादर्स में विशेष रूपसे पायी जाती है ।"[29]

स्त्री-पुरूष का मैथुनिक सम्बन्ध स्वाभाविक व साधारण माना जाता है, किन्तु इससे विपरीत अवस्था में उसे सम्लैंगिक विकृति ही माना जायगा । जब दो स्त्रियों के बाच ऐसे सम्बन्ध होते हैं., तो उन्हें "लिस्बियां" कहा जाता है । पूर्ववर्ती पृष्ठों में इसका पर्याप्त विवेचन हो चुका है ।

पुरुषों में यह समलैंगिकता दो प्रकार की मिलती है। प्रथम प्रकार के अन्तर्गत वे लोग आते हैं जो स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की पूर्तिहेतु इसे अपनाते हैं। इसमे दोनों पुरुष एक-दूसरे के शिश्नों को परस्पर रगड़ते हैं। "शहरमें घूमता आईना" में चेतन के पिता शादीराम कृष्ण और राधाका नृत्य करनेवाले लडकों के प्रति आकृष्ट होते थे।[30] अमीचन्द के मामा सोहन लालको बुढापे में भी सुन्दर लडकोंकी आवश्यकता रहती थी, जो उनके बिस्तरको गरम करे।[31] स्वयं चेतन में भी यह वृत्ति है, परन्तु संस्कार एवं मर्यादा के सैन्सर ने उसे दबा रखा है।[32]

दूसरे प्रकार की विकृति प्राय: नवाबी सभ्यता की देन है, जिसे लौंडेबाजी कहा जाता है। इसमें खूबसूरत लडको के साथ गुदामार्गीय मैथुन किया जाता है। डॉ. राही मासूम रजा के उपन्यास "आधा गाँव" में सलीमपुर के जमीदार अशरफुल्ला खाँ अपने साथ नमकीन लौंडे को जरूर रखते थे।[33] इसी उपन्यास में ही तक्कनचाचा कम्मो को गोदाम में ले जाते हैं। तक्कनचाचा और कम्मो के ऐसे सम्बन्धों का बड़ा ही कु प्रभाव कम्मों के चरित्र पर पडता है। रजा के "दिल एक सादा कागज" में तो ऐसे अनेक पात्र मिलते हैं। नारायण गंज की स्कूल पालिटिक्स में इस लौंडेबाजी का भी महत्त्वपूर्ण रोल है।

§5§ हस्त_मैथुन (masturbation) : हालाँकि आज के सैक्स-मनोवैज्ञानिक इसे विकृति नही मानते, वे उसे भयंकर व हानिकारक भी नहीं समझते,[34] तथापि इसे काम-पूर्ति की एक अस्वाभाविक क्रिया तो माना ही जायगा और शताब्दियों से संचित संस्कारो के कारण उसका व्यक्ति के मानस और फलत: उसके व्यक्तित्व पर एक अवांछित

कुप्रभाव तो पड ही सकता है ।

माँ-बाप के प्रेम से वंचित रहनेवाले या भयग्रस्त वातावरण में पलनेवाले एकान्त प्रिय बच्चों तथा किशोर-किशोरियों में यह विकृति प्रायः मिलती है । बडी उम्र के उन स्त्री-पुरुषों में भी यह प्रवृति मिलती है जिनके शादी नहीं होती, जो विधुर होते हैं या जिनको विवाह के बाद भी दीर्घ समय के लिए अलग रहना पड़ता है । "आपका बण्टी" का बण्टी स्नान करते समय अपने शिश्न को हाथ से तौलता है, देखता-परखता है [बण्टी] नहाने लगा तो अपने अंग को लेकर भी वैसी थ्रिल महसूस होने लगी । मन ही मन डॉक्टर साहब के साथ अपनी तुलना शुरू हो गई । बडा होकर वह भी ऐसा ही हो जाएगा । वह सोच रहा है, हाथ में लेकर देख रहा है, और भीतर ही भीतर एक अजीब-सी सिहरन हो रही है । पहली बार उसे लग रहा है, जैसे वह है, उसके भी कुछ है ।"[35] यह इस प्रवृत्ति का प्रारंभ है । "एक कहानी अन्तहीन" में गोविन्दराम की पत्नी मैके गयी है। अतः वह अपनी यौन-क्षुधाकी तृप्ति हस्तमैथुन द्वारा करता है---- "वह तकिएको भींचता । अपने पैर चारपाई पर कसता । कभी चित्त होता, कभी पट । उसकी छटपटाहट जलती रेत पर पडी मछली जैसी थी । जब उसने हाथका सहारा लेकर उस उबलते लावा को बाहर उलीच दिया, तभी वह सो सका था ।"[36] "काला-जल" का रोशन माँ [बी-दारोगिन] के रज्जूमियाँ के साथ के दूसरे विवाह से अप्रसन्न व लज्जित है । अतः वह सबसे कटा-छटा रहता है । परिणामतः उसमें यह आदत पड़ने लगती है ।

[6] पशुमैथुन [Bestiality]: पशुओं के साथ के मनुष्य के मैथुन को

कहा जाता है । ग्रीक साहित्य में एक दन्तकथा मिलती है जिसके अनुसार लीडा एक हंस की सहायता से हेलन नामक सुंदर लडकी को जन्म देती है ।[37] वैसे शारीरिक दृष्टि से यह संभव नहीं है, किन्तु मनुष्य का पशु के साथ का मैथुन अवश्य संभव है । गाँवों में कई ऐसे किस्से दिखने में आते हैं, जिन में पुरुषों के गाय, भैंस, बकरी, गधी आदि से मैथुन-कार्य संपादित होते हैं । मणि-मधुकर के उपन्यास "सफेद मे मने" में ढोरो के डॉ. भानमल को एक भैंस के साथ संभोग करते हुए दिखाया है----" डॉक्टर ने उसे (भैंसको) सहलाया । पुट्ठो पर थपकी दी । वह धीमे से अरड़ाकर बैठ गयी और जमीन पर गर्दन तानकर सुस्ताने लगी । डॉक्टर की जाँघों के बीच का हिस्सा कड़ा पडने लगा । पिंडलियों में कँप कँपी दौडने लगी । उसने पैंटके बटन खोले और जल्दी से भैंस के पुटठों को दबोकर बैठ गया । ढीली पूंछ उपर उठयी । गोबर की बू सांस में भर गयी । पर वह उसे बुरी नहीं लगी ।"38 भले ही आज के यौन-मनोवैज्ञानिक इन विकृत्तियों को हानिकारक न मानते हों, परंतु सामाजिक मर्यादाओं और संस्कारों के दबाव के कारण उससे व्यकित के व्यकितत्त्व पर कुप्रभाव अवश्य पड़ता है । उक्त उदाहरण में भीमा जब डॉक्टर को देखलेता है तो एक बारगी वह बुरी तरह से झेंप जाता है, उसके मन्में यह भय समा जाता है कि कदापित् यह बात वह सब लोगों में प्रचारित कर देगा । इसमें मनुष्य का व्यकितत्त्व कुंठित भी हो सकता है, वह हीनता-बोध का शिकार हो सकता है ।

(7) <u>जातीय-वृत्तिका आधिक्य</u> (*Erotomania*) : यह *Frigidity* और *Impotence* की विलोम स्थिति है । इससे पीड़ित व्यकित में जातीय-भावना का अतिरेक होता है । ऐसे लोगों की काम-वासना एक दो से तृप्त नहीं होती,

फलत: वे निरन्तर शिकार की शोध में रहते हैं। यह जातीय अतिरेकता उन्हें असाधारण विकृत एवं अपराधी भी बना सकती हैं। हमारे पुराणों में भी कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें जातीय-वृत्तिका अतिरेक मिलता हैं। ययाति नामक एक राजा हुए, जिनमें इस वृत्ति की इतनी प्रबलता थी कि इस कार्य हेतु अपने बेटे यदुका यौवन भी उन्होंने माँग लिया था। रूस की केथेरीन द्वितीय के प्रेमियों की संख्या कई थी, तथापि वह सदैव अतृप्त ही रहती थी। 39 पुरुष में इस वृत्तिको Satyriasis और स्त्रीमें Nymphomania कहते हैं।

नागार्जुन के उपन्यास "इमरतिया" की गौरी को हम उक्त कोटि में रख सकते हैं। एक स्थान पर मठकी सधुआइन भाई इमरतीदास उसके विषय में कहती है : "गौरी तो थी ही छिनाल। वह साल साल में दो-तीन मर्द बदलती थी। वह उन मर्दों का बुरी तरह से पीछा करती थी जो डील-डौल से तगड़े होते थे। एक बार मठका बड़ा घोडा गमाँया, वह बैचेनी में हिन हिना रहा था। ------घोड़े को उस बेताबी में देखा तो गौरी मुझसे बोली--"मैं इसको ठण्डा कर सकती हूँ।"40

"सफेद मे मने" की सुरजा जाटणी भी ऐसी ही एक औरत है। वह गुस्से से बताती है कि सन्दो उसका आँखों में आँसू देखना चाहता हैं, पर वह भी सच्ची जाटणी हैं। वह एक साथ दस मरदों को झेल सकती हैं। सिसकारी तक नहीं निकलने देती। 41

कई बार यौवन के प्रथम सोपान पर ही किसी स्त्रीको जब अतृप्ति का मुँह देखना पडता हैं, तब तृप्ति के लिए जो भटकन शुरू होती हैं उसमें उसके Nympho होने की संभावनाएँ बढ जाती हैं। "रेखा" उपन्यास की रेखा, "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई"

की शेठानी नर्मदाबेन तथा "मित्रो मरजानी" की मित्रो इसी प्रकार की औरतें हैं। समाज का नैतिक स्वास्थ्य इनसे बिगड़ सकता है।

कुछ लोगों को Erotics (any-thing and everything connected with sexual Love) पढ़ने का शौक होता है। यह साहित्य यदि अपरिपक्व मस्तिष्क वाले किशोर-किशोरियों के हाथों में पड़ जाय तो उससे उनका मस्तिष्क विकृत व कुंठित हो सकता है। "कालाजल" के बब्बन के पिता को ऐसी किताबें पढ़ने का शौक है। बब्बन को अपनी फूफेरी बहन सलमा-सल्लो आपासे अधिक आत्मीयता है। पिताजी के बक्स से कोई ऐसी ही किताब चुराकर बब्बन सल्लो आपा को देता है। इस किताब का ऐसा बुरा प्रभाव सल्लो पर पड़ता है कि विवाह से पूर्व गर्भवती होने के कारण एक रात शंकास्पद स्थितियों में उसकी मौत होती है।

<u>मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों का मानव-जीवन पररप्रभाव</u> : जातीय-कुण्ठाओं और विकृतियों की भाँति कतिपय मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों का भी मानव-जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों में निम्नांकित मुख्य है :-

(Inferiority Complex)
¶1¶ <u>लघुता-ग्रंथि या</u> "एहसासे कमतरी" भी कहते हैं। प्रत्येक व्यक्तिमें किसी-न-किसी प्रकार की कमी अवश्य होती है। अब व्यक्ति यदि अपनी उस कमी की क्षति-पूर्ति करने में सामर्थ्य प्राप्त कर ले तब तो ठीक है, अन्यथा उसमें हीनता ग्रंथिया लघुता-ग्रंथि का जन्म हो सकता है। यह ग्रंथि मुख्यत: तीन कारणों से विकसित होती है -

¶अ¶ काम-कुण्ठा ¶ब¶ अर्थ-कुण्ठा ¶क¶ जातिगत कुण्ठा

¶अ¶ <u>काम-कुण्ठा</u> : काम-वासना की यदि स्वस्थ ढंगसे पूर्ति न हो तो व्यक्ति में

काम-जन्नित कुण्ठाओं व विकृतियों का जन्म हो सकता है, जिसकी विवेचना पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर चुके हैं। यहाँ संक्षेप में उसकी चर्चा करेंगे। हृदयेश कृत "एक कहानी अन्तहीन" की चन्द्रकला का विवाह जल्दी हो नहीं रहा है। अतः वह खिड़की के पास खडी रहती है और आते-जाते युवकों से अपने काल्पनिक शारीरिक सम्बन्ध जोड़ती रहती है। स्नान कराने के बहाने वह अपने छोटे भाई की फुन्नी (जननेन्द्रिय) को भी छूती है, जिसमें उसे एक निन्नी पुरुष स्पर्शों को पाने के लिए जान-बूझकर भीडभाड़वाले स्थानों में जाती है। वह अपने भाई के साथ दिल्ली में नुमाइश देखने इसलिए जाती है कि उसने सुन रखा था कि दिल्ली की बसों में लोग खूब शैतानियाँ करते हैं।

"अन्तराल" में मोहन राकेश ने दूसरों के शरीर स्पर्श-लोलुप लोगों का बखूबी चित्रण किया है: "तीन पुरुषों की हल्की उकसाहट वह (श्यामा) कई बार महसूस कर चुकी थी। पहला व्यकित दायी ओर खड़ा एक युवक था, जिसे उसने आँखों से डाँट देने की कोशिश की उस पर डाँट का थोडा असर भी हुआ। पर शेष दोनों व्यकितयों को आँखो से पकड़ पाना असम्भव था। चेहरे के भावसे वे इस तरह बेलाग नज़र आते थे जैसे कि अपने नीचले शरीर से उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।"43 ऐसे काम-कुण्ठाओं से ग्रस्त व्यकित हीनता-बोध से भी ग्रस्त रहते हैं।

(ब) अर्थ-कुण्ठा:- मध्य-वर्ग या निम्न-मध्य-वर्ग में जो प्रदर्शन वृत्ति मिलती है, उसका उत्स अर्थ-कुण्ठा में ही है। आज हमारे मध्यवर्गीय समाज में फ्रीज, डाइनिंग-टेबुल, स्कूटर, टी.वी., खुद का मकान या फ्लेट जैसी चीज़ें "स्टेटस सिम्बोल" होती जा रही है। जिनके यहाँ प्रथम बार ये चीजे आती हैं, वे घुमा-फिराकर इनकी चर्चा अवश्य कर लेते हैं। कोई

मध्य-वर्गीय आदमी यदि हवाई जहाज से यात्रा करेगा तो अपनी बातो में वह "बायएयर" जाने की बात बात-बात में डालने का यत्न अवश्य करेगा ।

"टूटता हुआ आदमी" का धर्मनाथ जब शहर से गाँव आता है तब स्टेशन से गाँव जाने के लिए वह घोडा गाडी की तलाश करता है । वैसे गाँव "वाकिंग डिस्टंस" पर ही था और सामान भी अधिक नहीं था, पर गाँववालों पर वह अपनी संपन्नता का सिक्का गालिब करना चाहता था ।

डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यास "दिल एक सादा कागज" के जवाहर नगर के निवासियों की कृत्रिम व प्रदर्शन मूलक जीवन-प्रणाली के मूल में भी यही कुण्ठा उपलब्ध होती है । "अन्धेरे बन्द कमरे" [मोहन राकेश] का पत्रकार मधुसूदन जब सुषमा श्रीवास्तव को लेकर एक महँगी होटल में जाता है, तब सुष्मा को प्रभावित करने के लिए वह जान बूझकर कुछ अपरिचित "डिशों का आर्डर देता है"। डॉ. देवराज के उपन्यास "भीतर का घाव" का नायक कॉलेज में पढता है । एक-दो लडकियों के प्रति उसके मन में आकर्षण है । एक दिन मौका देखकर वह उन्हें केन्टिन में ले जाता है, पर अचानक उसका एक संपन्न सहाध्यायी वहाँ आ धमकता है । उसे देखकर उसकी सिटी-पिटी गुम हो जाती है । "मेनु" तय करने से लेकर बिल चुकाने तक के सारे मामलों में वह बाजी मार ले जाता है । नायक बेचारा खिसियाना-सा रह जाता है, क्योंकि आर्थिक पिछड़ेपन ने उसके मान को कुण्ठित कर दिया है । "शहर में घूमता हुआ आईना का चेतन, "गोबर गणेश" का विनायक "यह भी नहीं का सोहन, "टूटे हुए सूर्य-बिम्ब" के कौशल तथा नरेश आदि इसी अर्थ-कुण्ठा के कारण हीनता-बोध के शिकार है ।

(क) जातिगत कुण्ठा : प्राय निम्न जाति के लोगों में यह कुण्ठा पायी जाती है। उपाध्याय को उपाध्याय या चतुर्वेदी को चतुर्वेदी कहने से उसे अपमान नहीं लगता, पर किसी चमार या हरिजन को चमार या हरिजन कहने से उसे अपमान सा लगता है। अशिक्षित एवं ग्रामीण लोगों में यह कुण्ठा फिर भी कम मिलती है, परन्तु निम्न जाति के शिक्षित एवं शहरी व्यक्ति में यह कुण्ठा अधिक होती है। "धरती धन न अपना" का काली चमार है, पर शहर में कई वर्षों तक रह आया है। अत: उसे कोई जब चमार या चमारा कहता है तब उसके तन-बदन में आग सी लग जाती है। जमीदार हरनामसिंह काली से जलता है, परन्तु काली की अच्छी आर्थिक स्थिति के कारण उसे कुछ कह नहीं सकता, अत: उसकी (कालीकी) उपस्थिति में अपने नौकर मंगू को वह अनावश्यक डाँटते हुए कहता है--"कुत्ते की औलाद, चुप बैठ। कुत्ता चमार अपने आपको बड़ा पंच समझता है।" 44

"महाभोज" का बीसू भी अपनी जाति के अपमान से निरंतर जलता है, अत: उनमें चेतना फूंकने के लिए वह उन्हें पढाता है। परन्तु गाँव के सरपंच के भतीजे जोरावरसिंह को यह उचित नहीं लगता की गाँव के निम्न जाति के लोग सर उठाएँ, अत: एक दिन मौका देकर वह उसे खत्म करवा देता है। जाति को विस्तृत सन्दर्भों में यदि लिया जाय, तो वर्ग-विशेष भी उसमें आ सकते हैं। बदी उज्जमा कृत "एक चूहे की मौत" में क्लर्क बिरादरी की विभिन्न कुण्ठाओं को लेखक ने व्यंजित किया है। उसमें यह बताया गया है कि कोई छोटा चूहेमार (क्लर्क) यदि (बडा चूहेमार" (आफिसर) हो जाता है तो बड़े चूहेमारों के वर्ग में उसे हेय नजरों से देखा जाता है क्योंकि जिन्दगीभर छोटा चूहेमार रहने से उसमें उस वर्ग की तमाम कुण्ठाएँ मिलती हैं।

हमारे देशमें अंग्रजी का जो व्यामोह देखने में आता है, उसके पीछे भी यही जातिगत या वर्गगत कुण्ठा काम करती है। उत्तरी भारत में रहनेवाले प्रवीण को हिन्दी बोलने की आदत के छूट जाने का तथा अपने बच्चों को अंग्रजी के अतिरिक्त अन्य किसी भारतीय भाषा के नहीं आने का मलाल नहीं, बल्कि गर्व है। 45 प्रवीण की इस मनोवृत्ति के पीछे वर्गगत-कुण्ठा ही उत्तरदायी है। ऐसे ही "फारीन" का जो व्यामोह है, वह भी मध्यवर्गीय कुण्ठा का परिणाम है।

उक्त तीन कुण्ठाओं के अतिरिक्त अन्य भी कई कारण हो सकते हैं, जिनसे व्यकित में लघुता-ग्रंथि का निर्माण होता है। "कालाजल" की बी-दारेगिन मिर्जा करामत बेग की मृत्यु के बाद दूर के रिश्ते के देवर रज्जूमियां से निकाह पढ़ लेती है। इस शादी का उसके आठ-दश वर्षीय लडके रोशन पर बड़ा ही खराब प्रभाव पड़ता है। इसके परिणाम स्वरूप निर्मित लघुता-ग्रंथि के कारण उसके व्यकितत्व का जो विकास होना चाहिए नहीं होता सकता और वह एक तुनक-मिजाज सामान्य व्यकित बनकर रह जाता है।

"आपका बण्टी" का बण्टी मां-बाप के वैचारिक टकराव में निरंतर एक कमी महसूस करता है। दूसरे बच्चो की तुलना में वह अपने को अभागा समझता है। उसका यह दुर्गति तब और भी बढ जाती है जब शकुन अजय की प्रतिक्रिया में डॉ. जोशी से शादी कर लेती है। पहले घरमें बण्टी को सर्वाधिक प्राधान्य दिया जाता था, परन्तु यहां डॉ. जोशी के भी बच्चे हैं। उन बच्चों में बण्टी स्वयं को उपेक्षित अनुभव करता है। परिणामत: एक समय का "तेज" बण्टी शनै: शनै: "डल" होता जाता है। यह उसमें निर्मित लघुता-ग्रंथि का परिणाम है।

"कृष्णकली" (शिवानी) की कली जब अपने जन्म के दूषित इतिहास से परिचित होती है, तब उसमें लघुता-ग्रंथि का निर्माण होता है, जिसके कारण एक स्थान से दूसरे स्थान वह निरंतर भटकती रहती है और अन्ततः कैंसर ग्रस्त होकर दम तोड देती है।

"यह भी नहीं" का टोमी अपनी माँ की यायावरी वृत्ति से कुंठित है। श्रीकान्त वर्मा कृत "दूसरी बार" का नायक पहली बार के संभोग में शीघ्र-स्खलन का भोग बनकर हीनता-बोध से घिर जाता है। इस हीनता-बोध के कारण वह बात-बे बात तुनक ने लगता है। "कालाजल" का रोशन भी तुनक मिजाज है, उसके मूल में भी यही ग्रंथि है।

(2) श्रेष्ठता-ग्रंथि (Superiority Complex) : यह लघुता-ग्रंथि का विलोम है। जीवन में जो लोग अत्यधिक सफल व संपन्न होते हैं, उनमें यह ग्रंथि पाई जाती है। उच्च वर्गीय सफल लोगों में अधिकांशतः यह ग्रंथि होती है। लघुता-ग्रंथि से पीडित व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता, श्रेष्ठता-ग्रंथि से पीडित व्यक्ति का व्यक्तित्व इतना प्रखर होता है कि सामान्य लोग उसके सामने टिक नहीं पाते। इस ग्रंथिसे पीडित व्यक्ति स्वयं को अत्यंत श्रेष्ठ व विशिष्ट समझने लगता है। "मछली मरी हुई" का निर्मल पद्मावतः "स्कोग नहीं ------राधिका!" के मनीश, राधिका, डैन, आदिः "टेराकोटा" की मितिः प्रश्न और मरी चिका" का जयराजः "सबहि" नचावत राम गोसाईं" के जवरसिंह और सेठ राधेश्यामः "कुरू कुरू स्वाहा " की तारा झवेरीः "कृष्णकली" का प्रबार, विद्युतरंजन मजूमदार आदि पात्रों में यह ग्रंथि दृष्टिगत होती है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह ग्रंथि मानव-जीवन के लिए समस्यारूप

कैसे हो सकती है इस ग्रंथि से पीडित व्यक्ति अपने दोषों को कभी देख नहीं सकता और दूसरों की कभी सुन नहीं सकता । अतः ऐसे लोग दूसरों को कुंठित करते हैं । लघुता-ग्रंथि से पीडित व्यक्ति अपना और अपने परिवार का नुकसान करता है, जब कि श्रेष्ठता-ग्रंथि से पीडित व्यक्ति कई लोगों में लघुता-ग्रंथिका संक्रमण कर समाज को बहुत बडी क्षति पहुँचाते हैं । हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन आदि ऐसे ही श्रेष्ठता-ग्रंथि से पीडित लोग थे, जिन्हों ने समूची मानव-जातिको युद्ध की विभीषिकाओं में झोंक दिया ।

हमारे देशमें अंग्रेजी-दाँ लोग भी इस ग्रंथि से पीडित हैं । अपनी अंग्रेजी के घमंड में चूर होकर रात-दिन वे मानवता को अपमानित करते हैं । उनके लेखे देशी भाषा बोलेनेवा एक सामान्य मनुष्यकी तुलना में अंग्रेजी में भौंकनेवाला कुत्ता अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जायेगा

(3) बध्दत्व-ग्रंथि (Fixztion) : कुछ लोग ऐसे होते हैं जो समय व्यतीत हो जाने पर भी अपनी पिछली अवस्था को छोडना नहीं चाहते । बालक बनकर विगतावस्था से चिप के रहनेवाली इस ग्रंथि को "बध्दत्व" कहा जाता है । "मातृ- बध्दत्व से पीडित व्यक्ति अपनी माँ को ही आदर्श स्त्री मानता है और पत्नी से भी वैसी ही अपेक्षाएँ रखता है । ऐसे में यदि पत्नी का "अहं" बाच में आया तो उनका दाम्पत्य खंडित भी हो सकता है । "मित्रो मरजानी" में मित्रो का पति सरदारी कुछ-कुछ इसी प्रवृत्ति का है । महेन्द्र भल्ला के उपन्यास "एक पति के नोट्स" का किशोरी भी इसी ग्रंथिका शिकार है । ऐसे लोग अन्ततोगत्वा सुखी नहीं हो सकते ।

"एकोगी नहीं----राधिका " की राधिका "पितृ-बध्दत्व" (Father-Fixztion) से पीडित है, इसलिए उसे अपनी विमाता को कष्ट देने में आनंद

आता है, क्योंकि उसके अचेतन में कहीं "सौतिया डाह" पड़ा हुआ है । "रात्रि के समय प्रथम प्रहर में पापा की स्टडी में काम करते हुए राधिकाको यह ज्ञान भलीभांति रहता कि विद्या "उसकी विमाता" उसके कमरे में अकेली है । और उसे थोड़ा-सा सुख होता ।"46

डैन के अनुसार राधिका युवापुरुष को अपरिपक्व इसलिए समझती है कि प्रत्येक पुरुष में वह अपने पिता की सी मानसिक प्रौढ़ता ढूँढ़ती है । डैन के साथ उसकी आत्मीयता का कारण भी यही है कि प्रौढ़ होने के कारण डैन में उसे अपने पिता का प्रतिबिंब मिलता है । 47

मोहन राकेश के उपन्यास "अन्तराल" में देव श्यामा को पत्नी-रूपमें इसलिए सुखी नहीं कर पाता कि देव में अपनी बहिन के प्रति बध्दत्व की ग्रंथि है । "सफेद मेमने" की बन्नो में अपने मामा के प्रति बध्दत्व है, अत: जब बड़ी उम्र के मामा से दिखनेवाले रामौतार से उसकी शादी होती है तब उसे प्रसन्नता होती है ।

"अन्धेरे बन्द कमरे" की शुक्ला को अपने बहनोई हरबंस का "फिक्सेशन" है । उसके सम्बन्ध में सुरजीत कहता है कि "हर लिहाज़ से यह उसी को अपने आइडियल मानती है । वह कल को अगर कबूतरों से प्यार करने लगे तो यह लड़की घरमें कबूतर पालने लगेगी ।" 48

आवश्यक नहीं कि यह "बध्दत्व" किसी व्यक्ति विशेष के प्रति ही हो । यह किसी समाज, परिवेश, नगर या देश के प्रति भी हो सकता है । गिरिराज किशोर के उपन्यास "लोग" के रायसाहब का अपने परिवेश के प्रति इतना बध्दता है कि अंग्रेजों का जाना और सामान्य लोगों का उभरकर आना उन्हें भीतर ही भीतर काट रहा है ।

हमारे देशके नेताओं में अंग्रेजी और अंग्रेजीयत के प्रति बध्दत्व हैं, फलत: स्वाधीनता के बाद भी वे उससे चिप के हुए हैं ।

§4§ इलेक्ट्रा और इडियस ग्रंथि : फ्रायड के मतानुसार साधारण स्थिति में बालक का माता के प्रति और बालिका का पिता के प्रति स्वाभाविक प्राकृतिक आकर्षण रहता है, परन्तु किसी कारणवश यदि इस भावमें परिवर्तन आता है तब उसे असाधारण समझा जाता है और तब क्रमश: बालक एवं बालिका में इडिपस और इलोक्ट्रा ग्रंथिका निर्माण होता हैं ।

"मछली मरी हुई" की शिरीं मेहता शैशव-काल में अपने पिता के प्रति आकृष्ट थी, परन्तु प्रसूति के दौरान उसकी माताका देहान्त होने पर उसकी बडी बहन उसे पिता के विरुध्द भड़काकर उसमें पुरुष मात्र के प्रति घृणा का भाव पैदा करती है, फलत: उसमें इलेक्ट्रा ग्रंथि का निर्माण हाता हैं जो बाद में उसे असाधारण बना देता हैं ।

इसी प्रकार "रुकोगी नहीं------राधिका?" की राधिका अप ने पिता को अत्यधिक चाहती है । परंतु उसके पिता जब दूसरा विवाह करते हैं, तब राधिका के मनमें जो आदर्श पिता का मूर्ति है वह खंडित होती हैं, फलत: इलेक्ट्रा ग्रंथि के निर्माण के कारण वह पिता के प्रति विद्राह प्रकट करती हैं ।

"कालाजल" का रोशन अपनी माँ बी-दारोगित को खूब चाहता है । परन्तु वह जब रज्जूमियाँ से विवाह कर लेती है, तब प्रेमका वह भाव घृणा में बदल जाता हैं और उसमें "एडिपस" ग्रंथि का निर्माण होता हैं । "आपका बण्टी" के बण्टीमें भी इसी ग्रंथि का निर्माण हो रहा हैं-----" ये उसी की ममी है उसने आज तक कभी अपनी ममी को

ऐसा नहीं देखा । उसकी ममी ऐसी हो ही नहीं सकती । यह क्या हो रहा है छी-छी-बशरम-बेशरम सारे गुस्से, नाराजगी और दुःख के बावजूद अभी तक ममी उसकी ममी थीं, अब जाने क्या हो गईं । पता नहीं, उसे कुछ भी नाम देना नहीं आ रहा है । बस इतना लग रहा है कि अभी तक की ममी एकाएक ही जैसे कहीं से टूट-फूट गईं----- चकनाचूर हो गईं ।"49

‡5‡ सादवादी प्रवृत्ति (Sadism) : कुछ लोगों को हमेशा दूसरों को पीडित करने में आनंद की उपलब्धि होती है । ऐसी परपीड़क वृत्ति को मनोवैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली में सादवादी प्रवृत्ति या Sadism कहते हैं । सादवादी प्रवृत्ति से पीडित व्यकित को मैथुनिक व्यापारों में भी पीड़ा देने में संतुष्टि मिलती है । मेहरून्निसा परवेज के उपन्यास "कोरजा" का जुम्मन खाँ "सैडिस्ट" है । नानी का मकान उसके यहाँ गिरवी पड़ा है । उसे कुर्की से बचाने के लिए साजो को रोज जुम्मन खाँ के पास जाना पड़ता था और उसके अत्याचारों को सहन करना पड़ता था । वह साजो को नंगी करके रात-रातभर खड़ा रखता था । उसके बदन को झिझोड़ता था । वह विरोध न कर पाए, इसलिए उसे खंभे से बाँध देता था और फिर हँसते हुए उसके शरीर पर हाथ फेरता और नोंचता रहता था । 50

"बैसाखियोंवाली इमारतें" की मिस जायसवाल बैचलरों की अपेक्षा विवाहितों को अधिक पसंद करती हैं । पर-पुरुषों के साथ फ्लर्ट करने में उसे आनंदानुभूति मिलती है क्योंकि सैडिस्ट प्रकृति के कारण विवाहित लोगों के दाम्पत्य को खंडित करने में उसे एक विशिष्ट आनंद की उपलब्धि होती है ।

कुछ विद्वानों के मतानुसार "सूरजमुखी अंधेरे" की स्त्री Sadist प्रकृति की है क्योंकि पुरुषों को मोहपाश में फँसाकर उसे तड़पाने में उसे आनंदकी उपलब्धि होती है ।51। परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है । शैशव में हुए अवांछित बलात्कार के कारण उत्पन्न Frigidity यहाँ कारणभूत है । Sadist प्रकृति वाले लोगों को तो ऐसी निष्ठुरता में आनंद आता है, जब कि यहाँ इस संपूर्ण कार्य-व्यापार में निरंतर जलती रहती है ।

इस सम्बन्ध में रजनी पनीकर के उपन्यास "दूरियाँ" की चारू को हम ले सकते हैं । चारू यश से प्रेम करती है । उससे यौन सम्बन्ध भी रखती है । यश सेना-सेवा के अंतर्गत नागालैण्ड जाता है, वहाँ एक आदिवासी लड़की से यौन-सम्बन्ध स्थापित कर वह उससे शादी कर लेता है । चारू ठगी-सी रह जाती है । इसकी प्रतिक्रिया इतनी भयंकर होती है कि चारू "सैडिस्ट" हो जातर है । पुरुषो को अपनी तरफ खीचकर छोड देने में उसे मजा आता है । 52 "मुरदाघर" का जब्बार, "आधा गाँव" के फुन्ननमियाँ, "कालाजल" के रोशनमियाँ आदि स्त्री-पीड़क सैडिस्ट पुरुषो के उदाहरण हैं ।

।6। <u>मासोकवादी प्रवृत्ति (Masochism)</u> : यह सादवाद का विलोम रूप है । इस प्रवृत्ति के व्यकित को दूसरों द्वारा पीडित होने में विशिष्ट आनन्दानुभूति का अनुभव होता है । सामान्य तथा पुरुष थोडे-बहुत "सैडिस्ट" और स्त्रियाँ "मैसोइस्ट" होती है परन्तु उसका अतिरेक मनोवैज्ञानिक ग्रंथि का रूप धारण कर लेता है । "मैसोइस्ट" प्रकृतिवालों को यौन-क्रियाओं में भी बिना पीडित हुए संतुष्टि नहीं होती । पुरुषो का यह उत्पीड़क गुण ।दुर्गुण। ही उनकी संतुष्टि का

कारण होता है । आदिवासी तथा बहुत सी पिछड़ी हुई ग्रामीण स्त्रियों को जब तक उनके पतियों द्वारा कुछ-कुछ दिन के अन्तराल में मारा-पीटा नहीं जाता उन्हें अपना दाम्पत्य-जीवन फीका-फीका सा लगता है । "आधा गाँव" की कुलेसम इस प्रकार की स्त्री है । आधुनिक यौन-विज्ञान में तो इस पर 'Pain and Pleasure' तथा 'Bondage' जैसे अलग प्रकरण ही मिलते हैं । 53

मासोकवादी प्रवृत्तिवालों को यौन-क्रियाओं में भी दूसरों द्वारा उत्पीड़ित होने में आंतरिक संतोष होता है । ऐसे लोग सदैव दूसरों का दुःख भुगतने को तैयार रहते हैं । "छाया मत छूना मन" की वसुधा, "पचपन खम्भे लाल दीवारें" की सुषमा, "कोरजा" की अरमान-बी, "साँप और सीढ़ी" की धानमाँ आदि इसके उदाहरण हैं ।

<u>नगरीय जीवन में व्याप्त अजनबीपन (Alination) की समस्या</u> : औद्योगीकरण, नगरीकरण, यंत्रीकरण, भौतिक-समृध्दि की अंधी दौड़ वस्तुवादि एवं वैयक्तिक चिंतनके परिणाम स्वरूप पारिवारिक विघटन एवं आणविक या एकक और परिमाणविक परिवारों की निर्मिती, धर्म एवं नैतिक मूल्यों के प्रति बढ़ती अनास्था, युध्दों और दंगो की विभीषिका प्रभृति कारणों से आजका नगरीय-जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है । पुराने जीवन में आस्था की एक रीढ़ थी । व्यक्ति कहीं न कहीं किसी सूत्र में बँधा हुआ आवश्यक था । आज वह सूत्र ही टूट गया है । रक्त सम्बन्धों में भी बिलगाव आ गया है । यह आधुनिक जीवन की सर्वाधिक त्रासद स्थिति है कि व्यक्ति भयंकर एकलता के कगार पर खड़ा है । आज व्यक्ति भीड़ में भी अकेला है । आजका मनुष्य हजारों मील दूर का पता रखता है, पर उसे अपने पड़ोसी के बारे में कुछ भी मालूम

नहीं होता । परिणामत: आजका व्यक्ति अपने नगर, शहर, परिवेश, परिवार सभी में स्वयं को अजनबी महसूस करता है ।

डॉ. विद्याशंकर राय के शब्दों में : "आधुनिक मनुष्य प्रकृति, ईश्वर और समाज से कट गया है । संभवत: यह संसार के इतिहास में पहली बार हुआ है जब मनुष्य स्वयं अपने लिए समस्या बन गया है । आजका मनुष्य एक तरफ दूसरे ग्रहों पर अपना निवास बनाना चाहता है । और दूसरी तरफ उसका अपने संसार से संबंध टूट रहा है । मनुष्य दिन-प्रतिदिन इस विश्व के रहस्यों को उद्घाटित करने में लीन है । नियमत: इस प्रक्रिया में उसे इस दुनिया से और जुड़ना चाहिए किन्तु इसके ठीक विपरीत घटित होता है । सामान्य अर्थों में मनुष्य पूरे विश्व से परिचित है पर दूसरी तरफ वह अपने पडोशी से भी अपरिचित है । वर्तमान काल में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के द्रुत प्रसार से गाँव और शहर के परम्परित दृष्टि में जबरदस्त बदलाव आया है । वैज्ञानिक सभ्यता के गहरे संघात के फलस्वरूप नये नये सम्बन्ध विकसित हुए । इन नवविकसित सम्बन्धों से मनुष्य सही अर्थों में नहीं जुड़ पाया । पारम्परिक रिश्तों की जड़ उखड ने से पुराने किस्म के संबंध अर्थहीन हो गये और मनुष्य निराधार हो गया । मशीनीकरण, वस्तु परकता, आपसी प्रतिस्पर्धा और भीषण भाग-दौड से यह संसार आकृतिविहीन हो गया है । इस निराकार संसार से मनुष्य किसी प्रकारका रागात्मक सम्बन्ध विकसित नहीं कर पाता । इस असमर्थता से अजनबीपन का बोध पनपता है । अजनबीपन मूलत: एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक अवस्था है जिसके अंतर्गत मनुष्य अनुभव करता है कि वह समाज से बहिष्कृत व उपेक्षित है तथा वह समाज, सामाजिक नियमों-उपनियमों व परम्पराओंको प्रभावित करने में नितान्त असमर्थ है ।"54

आधुनिक हस्ताक्षरों में प्रमुख ऐसे राजेन्द्र यादव ने मध्यम वर्ग के इस विवशताजन्य अलगाव, उनके अजनबीपन और अभिशप्त नियतिका आकलन करते हुए लिखा है :" "बड़े-बड़े राष्ट्रीय या वैयक्तिक उद्योगों की छायामें करोड़ो लोगों का ऐसा वर्ग ॥मध्यम वर्ग॥ है जो कहीं भी अपने को जुड़ा हुआ नहीं पाता । कोई शहर उनका अपना नहीं है, काई सम्बन्ध उनका अपना नहीं है, उनकी जड़ें न कहीं पीछे खेत-खलिहानों में हैं, न किसी संयुक्त परिवार में ।"55

अजनबीपन की समस्या को आधुनिकीकरण। से जोड़ते हुए डॉ. रमशकुंतल मेघने लिखी है कि रहन-सहन का परायीकृत ढंग विकसित होने पर तकनी की विधियाँ अजनबीपन को गहराने लगती है---"शराब की बोतले, पब्लिक स्कूल में पढनेवाली संतति, फैशनवाली वेशभूषा, सिगार और मिनी स्कर्ट आदि ऐसी स्थिति में परायेपन के निमित्त कारण हो जाते हैं । जब रहन-सहन का स्तर तो बढ जाता है लेकिन मनुष्य ॥बुध्दिजीवी॥ की सामाजिक उन्नति नहीं होती, तब इस तरह का भ्रामक एवं घटिया आत्म आधिपत्य मूलक परायापन परिव्याप्त हो जाता है । हमारे उपभोग प्रधान अर्थतंत्र में नवोदित मध्यवर्ग इसका शिकार हो गया है । ये वस्तुएँ स्टेटस, फैशन और प्रतिष्ठा तीनों को प्रदान करती है । मात्र प्रतिष्ठा के लिए ॥व्यवहार तथा सुविधाके लिए नहीं॥ इनका उपयोग एक तीव्र परायीकृत आवेश का स्त्रोत हो जाता है ।"56

स्वाधीनता के पश्चात् देशमें बड़ें पैमाने पर हुए औद्योगीकरण, पूंजी विनियोपन और अवद्यनिक पूंजीपति वर्ग के मुनाफों में हुई कई गुना अतिशय वृध्दि तथा सामान्य जनकी दयनीय आर्थिक-सामाजिक स्थिति ने मध्यमवर्ग के मानस में अलगाव और अजनबीपन की अनुभूति को गहराया है । फलस्वरूप सातवें दशक के साहित्य में महत्वपूर्ण और बिलकुल

नये ढंग का बदलाव परिलक्षित होता है । इस सम्बन्ध में डॉ. अतुलवीर अरोड़ा ने लिखा है कि, "सन् साठके बाद सम्बन्धों के बदलते हुए यथार्थ की अनगिनत विशिष्ट मुद्राएँ ग्राम, शहर तथा महानगर के त्रिस्तरीय विस्तार में मुखरित होने लगती है, जिसमें शिक्षिता नारी के सम्बन्धों का एक टूटता-बनता और बिखरता संसार है, जहाँ पुरुष अधिकाधिक भावनाहीन और जड़ होता गया है ।"57

नई कविता के पुरोधा लक्ष्मीकान्त वर्मा इस अजनबीभाव के सम्बन्ध में लिखते हैं: "स्वातंत्र्योत्तर मानस के खंडित स्वप्नों और एक-एक कर टूटते भ्रमों के बीच रह-रह कर एक ऐसा रेगिस्तान पनप रहा है जिसमे संवदनाओं की मार्मिकता और भावबोध की भिन्नता दोनों ही एक अजनबीपनी का बोध देने लगते हैं । गत बीस वर्षों में यह रेगिस्तान, यह अजनबीपन, यह काठ के चेहरों से रे होने की विवशता और आत्म साक्षात्कार की पाषाणी अवरुद्धता बढ़ी है ।"58

आलोच्यकाल के नगरीय परिवेश युक्त "अपने-अपने अजनबी," "वे दिन", "अठारह सूरज के पौधे", "बैसाखियों वाली इमारतें", "एक पति के नोट्स", "एकोगी नहीं------राधिका?" "मुरदाघर", "नंगा शहर", "एक कटी हुई जिन्दगी, एक कटा हुआ कागज", "अन्धेरे बन्द कमरे", "डाक-बंगला, "टेराकोटा", "चित्त कोबरा "शहर था, शहर नहीं था", "यात्राएँ", "आगामी-अतीत", "गोबर-गणेश", "टूटतें-बिखरते लोग", "काँच का आदमी", टूटे"हुए सूर्य-बिम्ब", प्रभृति उपन्यासों में यह अलगाव एवं अजनबीपन की भावना हमें उपलब्ध होती है ।

"अपने-अपने अजनबी की सेल्मा ईश्वर-सम्बन्धी परिवर्तित धारणा को स्पष्ट करते हुए कहती है----"ईश्वर को हम कैसे जान सकते है? जो हम जान सकते हैं वे

वे कुछ गुण हैं और गुण हैं इसलिए ईश्वर के तो नहीं है। हम पहचानते हैं अनिवार्यता, हम पहचानते हैं अंतिम और चरम और सम्पूर्ण अमोघ नकार, जिस नकार के आगे और कोई सवाल नहीं है और न कोई जवाब ही। इसलिए मौत ही तो ईश्वर का एकमात्र पहचाना जा सकनेवाला रूप है। पूरे नकार का ज्ञान ही सच्चा ईश्वर ज्ञान है। बाकी सब सतही बातें हैं और झूठ हैं।"59

इसी उपन्यास में सेल्मा नियति की शक्ति को परिपुष्ट करती हुई कहती है: "और स्वतंत्र, कौन स्वतंत्र है कौन चुन सकता है कि वह कैसे रहेगा या नहीं रहेगा? मैं क्या स्वतंत्र हूँ कि मर जाऊँ? मैं ने चाहा था कि अंतिम दिनों में कोई मेरे पास न हो। लेकिन क्या वह भी मैं चुन सकी? तुम क्या समझती हो कि इससे मुझे कोई तकलीफ नहीं होती कि जो मैं अपनों को भी नहीं दिखाना चाहती थी, उसे देखने के लिए भगवानने एक-एक अजनबी भेज दिया।"60

"वे दिन" के रायना, "मैं" टी.टी. आदिमें यह अजनबीपन का भाव दृष्टिगोचर होता है। रायना प्रेम को बिलकुल शारीरिक धरातक पर ग्रहण करती है। इसमें परिचय-अपरिचय को वह अधिक महत्व नहीं देती--" हम एक दूसरे के बारे में कितना कम जानते हैं।-----तुम्हें यह बुरा लगता है।---कम जानना।----नहीं मुझे यह कम भी ज्यादा लगता है-----हम उतना ही जानते हैं जितना ठीक है।"61 स्वदेश से आये बहन के पत्र को "मैं" द्वारा कई दिनों तक न पढ़ना तथा माँ की शादी के समाचारों को सुनकर टी.टी. का मित्रों को पीने के लिए आमंत्रित करना भी इसी अजनबीपन के भाव का द्योतक है।

"रुकोगी नहीं राधिका"? की राधिका को लगता है कि वह अपने परिवेश से जुड़ी हुई नहीं है। वह इस भीड़, शोर-शराबे और चहल-पहल से एकदम कटी हुई है। उसका जीवन एक "लम्बी अन्धकारपूर्ण सुरंग" की निरुद्देश्य यात्रा है। वह समाजमें रहते हुए भी निर्वासित है। उसने सोचा था कि कदाचित् स्वदेश लौटने पर उसके अजनबीपन का "हिमखण्ड" पिघलेगा, पर कुछ भी नहीं बदला। उसके भीतरका अजनबीपन इस अपने परिवेश में और भी बढ़ गया।

व्यवस्था की क्रूरता, निष्ठुरता और अमानवीयता के बीच निराशा और विवशता की मिली-जुली अनुभूति "मुरदाघर" में अजनबीपन के बोध को गहराती है। "वस्तुत: मुरदाघर वह स्थान नहीं जहाँ शव रखेजाते हैं, वरन् यह गन्दी घिनौनी, घृणित बस्तियाँ ही मुरदाघर हैं। आत्माभिमान शून्य, मूल्यहीन, चेतनाहीन जिन्दगियों को जीनेवाले ये लोग चलती-फिरती सड़ती लाशें नहिं, तो और क्या हैं?"[62] इसी उपन्यास की बीमार चमेली के इस कथन में अजनबीपन कौंध रहा है----"अस्पताल और हवालात। मेरे कू कुछ फरक नई लगता बाई। जइसा ये वइसा वो। जीना वइसा मरना क्या फरक?"[63]

जगदम्बा प्रसाद दीक्षित के उपन्यास "कटा हुआ आसमान" का नौटियाल सोचता है कि इस भटकाव का कोई अटकाव नहीं है। आदमी एक गटरसे दूसरी गटरमें फेंक दिया जाता है। "यह देश हमारा नहीं है। क्योंकि हम भी तो अपने कहाँ हैं? घुटन का सफर कहाँ खत्म होगा? नौटाक पर या ह्विस्की के पैग पर? किटी पर या श्रीमद्भगवद् गीता पर। नहीं, सफर कभी खत्म नहीं होता है। वह सिर्फ शुरू होता है। हर आदमी का सफर सिर्फ शुरू होता है। कभी खत्म नहीं होता है।"[64] इसी उपन्यास में

अन्यत्र कहा गया है---"एक बहुत बड़ा शहर-----जहाँ हर आदमी अजनबी है। एक बहुत लम्बी जिन्दगी जीने के बाद अजनबीयों की तरह मर जाना है।"[65]

निष्कर्ष: अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों का अन्वेषण कर सकते हैं: §1§ मानव-जीवन की सभी समस्याएँ परस्पर जुड़ी हुई होती हैं। कई बार सामाजिक-पारिवारिक एवं आर्थिक कारणों से मनोवैज्ञानिक, तो कभी मनोवैज्ञानिक कारणों से सामाजिक वा पारिवारिक समस्याएँ उद्भूत होती हैं।

§2§ मनुष्यके बहुत से व्यवहारों का उत्स उसका अचेतन मन होता है। यही अचेतन हमारे व्यकितत्व, हमारे समूचे कार्य-व्यापार तथा हमारे नैतिक आचारों का निर्माता व नियंता होता है।

§3§ नगरीय परिवेश की संकुलता एवं जटिलता के कारण उसमें मनोवैज्ञानिक समस्याओं व गुत्थियों की बहुलता उपलब्ध होती है।

§4§ खंडित दाम्पत्य-जीवनकी समस्या के मूलमें वैयक्तिक चिंतन, बौध्दिकता, शिक्षा आदि से उद्भूत स्त्री-पुरुष के "अहं" का टकराव है।

§5§ जातीय-ठण्डापन, स्त्री-समलैंगिकता, नपुंसकता, समलैंगिकता, हस्तमैथुन, पशुमैथुन, जातीय-वृत्ति का आधिक्य प्रभृति काम-जनित कुण्ठा एवं विकृतियों से मानव-जीवन में अनेक समस्याएँ पैदा होती हैं।

§6§ लघुता-ग्रंथि, श्रेष्ठता-ग्रंथि, सादवादी वृत्ति, मासोकवादी वृत्ति, इलेक्ट्रा व इडीपस-ग्रंथि प्रभृति मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों का प्रभाव मनुष्य के चरित्र एवं व्यक्तित्व पर पड़ता है।

§7§ औद्योगीकरण, नगरीकरण, यंत्रीकरण, आधुनिकता, वस्तुवादी-अस्तित्ववादी चिंतन, वैयक्तिक प्रतिमान प्रभृति कारणो से नगरीय जीवन में अजनबीपन की समस्या दिन-

प्रतिदिन बढ रही है।

अध्याय : 5 सन्दर्भ :

1. अँगरेजी-हिन्दी कोश:फादर कामिल बुल्के: पृ.524-374 ।

2. "हिन्दी उपन्यास:एक अंतर्यात्रा" पृ.80-81 ।

3. "रुकोगी नहीं--------राधिका?" पृ. 38 ।

4. "आपका बण्टी" : पृ.31-32 ।

5. "संचेतना" : दिसम्बर,1971, पृ.62 ।

6. "आपका बण्टी" : पृ. 39 ।

7. "रुकोगी नहीं------राधिका?" : पृ. 33 ।

8-9. चेतन मन बाहयत: "इगो"(Ego) और "इड"(ID) से संचालित होता है। मस्तिष्क का वह भाग जहाँ मनुष्य की प्रारंभिक व स्वाभाविक इच्छाएँ निवास करती है "इड"(It Wants) कहलाता है। "इड" की प्राकृतिक इच्छाओं को सांसारिक और सामाजिक प्रतिष्ठा की मान्यताओं द्वारा अनुशासित करनेवाले अंशों को "इगो" (I will not) कहते है। सुपर इगो : You must not "Facts & Theories": Ives Hendrick M.D. : P. 158

10. श्रीकान्त वर्मा : "हिन्दी-उपन्यास : पहचान और परख" सं. डॉ.इन्द्रनाथ मदान : पृ. 226 ।

11. "अन्धेरे बन्द कमरे" : पृ. 345 ।

12. "मन-वृन्दावन" : पृ. 77 ।

13. "वे दिन" : पृ. 62 ।

14. "अन्धेरे बन्द कमरे" : पृ. 422 ।

15. वही : पृ. 122 ।

16. "रेखा" : पृ. 85 ।

17. वही : पृ. 86 ।

18. वही:पृ. 88 ।

19. वही : पृ. 88 ।

20. "चिन्त कोबरा" : पृ. 102 ।

21. "Frigidity is a lack of sexual desire in the Female, leading to an inability to respond to sexual stimulation, with a result that no orgasm is possible. It is analogous to impotence in the male." : 'The Sex-Life File': S. J. TuFFill : P. 155 |

22. "सूरजमुखी अन्धेरे के" : पृ. 125 ।

23. An A.B.Z of Love: Inge & Stenhegeler : P. 214 |

24. "रेखा" : पृ. 173 ।

25. वही : पृ. 178 ।

26. "मछली मरी हुई" : पृ. 63 ।

27. वही : पृ. 67-68 ।

28. "People whose sexual urges are directed principally Towards persons of their own sex are called homo sexual and their interest is called homo sexuality, both terms being derived from The Greek Words 'home' (meaning same) and Sex.

: An A.B.Z. of Love : P. 162-163 |

29. "हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास" : पृ. 87 ।

30. "शहर में घूमता आईना" : पृ. 199 ।

31. वही : पृ. 450-451 ।

32. वही : पृ. 150, 152, 153, 155 ।

33. "आधा गाँव" : पृ. 91 ।

34. "Masturbation : Also known as onanism, auto erotics and many other things-'Self-abuses' is one of the worst of them and dates from the days when it was believed that masturbation was dangerous and abnormal, it is not so very long ago that people used to tell their children as well as themselves this lie. Masturbation means trying to satisfy one's sexual urges alone and unaided." :An A.B.Z. of Love : P. 227 |

35. "आपका बण्टी" : पृ. 133 ।

36. "एक कहानी अन्तहीन" (इब्नेश) : पृ. 78 ।

37. An A.B.Z. of Love : P. 30 |

38. "सफेद मेमने" : पृ. 50 ।

39. "Catherine II of Russia : An empress who lived in the middle of the eighteenth century. She was famous for her insatiable appetite for sex and is said to have had official state lovers by the score. It is possible she was merely Constantly unsatisfied." An A.B.Z. of Love : P. 57 |

40. "इमरतिया" : पृ. 27 ।

41. "सफेद मे मने" : पृ. 56 ।

42. An ABZ of Love : P. 115 |

43. "अन्तराल" : पृ. 104 ।

44. "धरती धन न अपना" : पृ. 57 ।

45. "एकोगी नहीं-------राधिका," : पृ. 104-105 ।

46. वही : पृ. 35 ।

47. वही : पृ. 38 ।

48. "अन्धेरे बन्द कमरे" : पृ. 75 ।

49. "आपका बण्टी" : पृ. 131 ।

50. "कोरजा" : पृ. 91-92 ।

51. डॉ. धनराज मानधाने तथा डॉ. पारुकांत देसाई : देखिए क्रमश : हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास" तथा "साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास" ।

52. "दूरियाँ" : पृ. 62 ।

53. See, 'The Sex-Life-File'.

54. "आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन" : पृ. 11 ।

55. "प्रेमचन्द की विरासत और अन्य निबन्ध" : पृ. 12 ।

56. "आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण" : पृ. 206 ।

57. लेख: आधुनिकता के आईने में हिन्दी उपन्यास" : "परिशोध" : 17 अक्तूबर, 1972 : पृ. 57 ।

58. "आलोचना" पूर्णांक मा, जनवरी-मार्च : 1968 : पृ. 25 ।

59. "अपने-अपने अजनबी": पृ. 54 ।

60. वही : पृ. 47 ।

61. "वे दिन" : पृ. 227 ।

62. "साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास" पृ. 165 ।

63. "मुरदाघर" : पृ. 100 ।

64. "कटा हुआ आसमान" पृ. 98 ।

65. वही : पृ. 121 ।